श्रुति-रत्नावली

[वेद-उपनिषदोंके चुने हुए मंत्रोंका अर्थसहित संग्रह]

"भोला"

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९८९ प्रथम संस्करण ५२५०

मूल्य ||) आठ आना

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

श्रीपरमात्मने नमः

निवेदन

स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजीने कुछ श्रुतियोंका संग्रह, विभाग और भाषान्तर करके बड़ा उपकार किया है। इस श्रुति-संग्रहसे प्रधान-प्रधान श्रुतियोंको अर्थसहित एक ही जगह पाठक पढ़ और समझकर लाभ उठा सकेंगे। जहाँतक अनुमान है, हिन्दीमें इस ढंगका यही संग्रह है। श्रीगोपाल ब्रह्मचारीजीने श्रुतियोंकी वर्णानुक्रमणिका बनाकर सोनेमें सुगन्धका काम किया है। आशा है हिन्दी जाननेवाले सज्जन इस ग्रन्थसे यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

प्रकाशक.

ऋषि-आश्रम

श्रुति-रत्नावली

ॐ

तत्सत्परमात्मने नमः

श्रुति-रत्नावली

मंगलाचरणम्

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परम्॥ १॥

अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः॥ २॥

ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥ ३॥

ॐ

तत्सत्परमात्मने नमः

श्रुति-रत्नावली

मंगलाचरण

जो ब्रह्म स्मरणमात्रसे पुरुषोंके अशुभ-अमंगल दूर कर देता है और शुभसंततिका विस्तार करता है, वह परम मंगलरूप है ॥१॥

अति कल्याणरूप होनेसे, नित्य कल्याणयुक्त होनेसे और स्मरण करनेवालोंको वर देनेवाला होनेसे ब्रह्मवेत्ता उस ब्रह्मको मंगलरूप जानते हैं ॥ २ ॥

ॐकार और अथ—ये दोनों शब्द ब्रह्माके कण्ठको भेदन करके प्रथम निकले हैं इसलिये दोनों मंगलरूप हैं ॥ ३ ॥

शान्तिपाठश्रुतयः

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ १॥

(तैत्ति० १।१।१)

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ २॥

(तैत्ति० २।१।१)

ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ३॥

(तैत्ति० १।४।१)

शान्तिपाठ श्रुतियाँ

ॐ मित्र हमारे लिये सुख करनेवाला होवे। वरुण सुख करनेवाला होवे। अर्यमा हमारे लिये सुख करनेवाला होवे। इन्द्र हमारे लिये सुख करनेवाला होवे। बृहस्पति सुख करनेवाला होवे। विस्तीर्ण पादवाला विष्णु हमारे लिये सुख करनेवाला होवे। ब्रह्मके लिये नमस्कार है। हे वायो ! आपको नमस्कार है। आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। यथार्थ कहूँगा। सच कहूँगा। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे। वह आचार्यकी रक्षा करे। रक्षा करे मेरी। रक्षा करे आचार्यकी। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः (दिनके अभिमानी देवताका नाम मित्र है, रात्रिके अभिमानी देवताका नाम वरुण है, सूर्यमण्डल और नेत्रके अभिमानी देवताका नाम अर्यमा है, हाथ और बलका देवता इन्द्र है, वाणी और बुद्धिका देवता बृहस्पति है, पदोंका देवता विष्णु हैं, सूत्रात्मक वायुका नाम यहाँपर ब्रह्म है और प्राणका नाम वायु है) ॥ १ ॥

ॐ वह प्रसिद्ध परमेश्वर हम शिष्य और आचार्य दोनोंकी रक्षा करे। वह प्रसिद्ध परमेश्वर हम दोनोंको विद्याके फलका भोग करावे। हम दोनों मिलकर वीर्य यानी विद्याकी प्राप्तिके लिये सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनोंका पढ़ा हुआ तेजस्वी होवे, हम दोनों परस्पर द्वेष न करें। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ २ ॥

ॐ जो प्रणव छन्दोंमें श्रेष्ठ है, विश्वरूप है, अमृतरूप वेदोंसे अधिक हुआ है, वह प्रणव—ॐकाररूप इन्द्र मुझको बुद्धिका बल देवे। हे देव ! मैं अमृतका धारण करनेवाला होऊँ। मेरा शरीर रोगरहित रहे। मेरी जिह्वा मधुरभाषिणी हो, कानोंसे मैं बहुत सुनूँ। आप ब्रह्मके कोश हैं। लौकिक बुद्धिसे ढके हुए हैं। जो कुछ मैंने सुना है, उसकी रक्षा कीजिये। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ३ ॥

ॐ अहं वृक्षस्य रेरिव । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्व-पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणं सवर्चसम् । सुमेधा अमृतोऽक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥

(तैत्ति० १ । १० । १)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥५॥

(ईशा० १)

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च । सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म-निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मे अस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥६॥

(केन, छान्दोग्य)

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठित-माविरावीर्म एधि । वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीर-नेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यमृतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारमवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥७॥

(ऐतरेय)

ॐ मैं संसाररूप वृक्षका काटनेवाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वतकी पीठके समान है। मैं सूर्यके समान अत्यन्त पवित्र और शुद्ध अमृत हूँ। प्रकाशसहित बल हूँ। सुन्दर बुद्धिवाला, अमृत और नाशरहित हूँ। ये वचन वेदके जाननेके पश्चात् त्रिशङ्कुके कहे हुए हैं। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥

ॐ वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है, पूर्णका पूर्ण लेकर पूर्ण ही शेष रहता है। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥५॥

ॐ मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, बल और सब इन्द्रियाँ वृद्धिको प्राप्त हों। सब ब्रह्मरूप उपनिषद् है। मैं ब्रह्मका तिरस्कार न करूँ, ब्रह्म मेरा तिरस्कार न करे, हम दोनोंकी परस्पर प्रीति हो, परस्पर प्रीति हो, ब्रह्मात्मामें निरन्तर प्रेम करनेवाले वेदान्तोंमें प्रकाशित किये हुए धर्म मुझमें होवें, मुझमें वे होवें। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥६॥

ॐ मेरी वाणी मनमें प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणीमें प्रतिष्ठित हो। हे स्वप्रकाश ब्रह्म चैतन्यात्मन्! मेरे लिये अविद्या दूर करनेको आप प्रकट हों वेदका तत्त्व मेरे लिये लाइये। मेरा सुना हुआ मुझे न छोड़े। इस पढ़े हुएको मैं दिन-रात धारण करूँ। परमार्थमें सत्य बोलूँ! व्यवहार-में सत्य बोलूँ। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे, वह आचार्यकी रक्षा करे! रक्षा करे मेरी। रक्षा करे आचार्यकी, रक्षा करे आचार्यकी। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥७॥

ॐ भद्रं नो अपिवातय मनः॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ८ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः। व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ९ ॥

(प्रश्न०)

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१०॥

(श्वेता० ६। १८)

ॐ हमारा कल्याण हो, मन पवित्र कीजिये। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥८॥

ॐ हे देवो ! हम कानोंसे कल्याणरूप वचन सुनें। ध्यान करनेवाले हम नेत्रोंसे कल्याणरूप देखें ! स्थिर अंगोंद्वारा सूक्ष्म श्रुतियोंसे स्तुति करें। हे देवो ! आयुभर हम हित प्राप्त करें। महान् कीर्तिवाला इन्द्र हमको आनन्द देवे। विश्वका जाननेवाला सूर्य हमको आनन्द देवे। अकुण्ठित गतिवाला गरुड़ हमको आनन्द देवे। बृहस्पति हमको आनन्द देवे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥९॥

ॐ जो ब्रह्माको पूर्वमें धारण करता है और जो उसके लिये वेदोंको देता है, आत्मबुद्धिके प्रकाशरूप उस प्रसिद्ध देवकी शरणमें मैं मुमुक्षु जाता हूँ। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१०॥

कर्मविषयकश्रुतयः

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ १ ॥
(ईश० २)

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳरताः ॥ २ ॥
(ईश० ९)

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥३॥
(ईश० १०)

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥४॥
(ईश० ११)

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥५॥
(ईश० १२)

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥६॥
(ईश० १३)

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वाऽसम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥७॥
(ईश० १४)

कर्मविषयक श्रुतियाँ

सौ वर्षतक यहाँपर कर्म करता हुआ ही जीनेकी इच्छा करे, इसी प्रकार तुम-जैसे मनुष्यके लिये है, अन्यथा नहीं है; ऐसा करनेसे मनुष्य कर्मसे लिपायमान नहीं होता ॥१॥

जो अविद्यारूप कर्मकी उपासना करते हैं, वे घोर अन्धकारको प्राप्त होते हैं और जो देवताकी उपासनामें प्रीतिवाले हैं, वे और भी अधिक घोर अन्धेरेको प्राप्त होते हैं ॥२॥

देवताकी उपासनासे अन्य फल होता है और कर्मसे अन्य फल होता है, ऐसा हमने उन विद्वानोंसे सुना है, जिन्होंने हमको कर्म और उपासनाका उपदेश दिया है ॥३॥

जो विद्या और अविद्या दोनोंको साथ जानता है और उनका अनुष्ठान करता है, वह अविद्यासे मृत्युको तरकर विद्यासे अमृतको भोगता है ॥४॥

जो जगत्की कारणरूप प्रकृतिकी उपासना करते हैं, वे अन्धतम लोकोंको प्राप्त होते हैं; और जो कार्यभूत हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं, वे और भी अधिक अन्धतम लोकोंको प्राप्त होते हैं ॥५॥

कार्यरूप हिरण्यगर्भकी उपासनासे अन्य फल कहते हैं, अव्याकृतकी उपासनासे अन्य फल कहते हैं; ऐसा हमने उन धीर पुरुषोंसे सुना है, जिन्होंने हमको उपदेश दिया है ॥६॥

अव्याकृत और हिरण्यगर्भरूप कार्य इन दोनोंको जो साथ जानता है और उनका अनुष्ठान करता है, वह कार्यसे मृत्युको तर अव्याकृतसे अमृतको भोगता है ॥७॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥८॥
(कठ० १।२।५)

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥९॥
(कठ० १।२।६)

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमास-
मचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च ।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमश्रद्धयाहुत-
मासप्तमांस्तस्य लोकान्हिनस्ति ॥१०॥
(मुण्ड० १।२।३)

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
विस्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥११॥
(मुण्ड० १।२।४)

अविद्यामें वर्तनेवाले, अपनेको धीर पण्डित माननेवाले, कुटिल गति चाहनेवाले मूढ़ अनर्थको प्राप्त होते हैं, जैसे अन्धेके साथ जानेसे अन्धा अनर्थको प्राप्त होता है ॥८॥

धनके मोहसे मूढ़ हुए प्रमादी अज्ञानीको परलोकके साधन नहीं भासते हैं। यह ही लोक है, परलोक नहीं है, ऐसे माननेवाले वारम्वार मुझ यमराजके वशमें आते हैं ॥ ९ ॥

जिसका अग्निहोत्र दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयण, अतिथि-पूजन इन सबसे रहित होता है, जो सम्यक् आहुति नहीं देता, वैश्वदेव-कर्म नहीं करता, विधिसे और श्रद्धासे आहुति नहीं देता, वह भूः आदि सात लोकोंको नष्ट करता है ॥ १० ॥

काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, विस्फुलिङ्गिनी और देवी विश्वरुचि ये अग्निकी सात जिह्वाचलनस्वभाववाली हैं ॥ ११ ॥

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु
यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् ।
तं नयन्त्येता सूर्यस्य रश्मयो
यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥१२॥
(मुण्ड० १ । २ । ५)

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं
नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभू-
त्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥१३॥
(मुण्ड० १ । २ । १०)

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ॥१४॥
(मुण्ड० १ । २ ।१२)

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते ॥ १५ ॥ (छा० ८ । १ । ६)

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति ॥ १६ ॥ (छा० ५ । १० । ३)

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥ १७ ॥ (छा० ५ । ४ । २)

एष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥१८॥
(छा० ५ । १० । ४)

इन दीप्यमान जिह्वाओंमें जो यथाकाल आहुति देता हुआ अग्निहोत्र करता है उसे वे आहुतियाँ सूर्यकी किरणोंके साथ मिलकर जहाँ देवताओंका एक पति सबसे ऊपर बर्तता है, वहाँ ले जाती हैं ॥ १२ ॥

इष्ट और पूर्तको श्रेष्ठ माननेवाले मूढ़ कर्मके सिवा अन्य श्रेय नहीं है, ऐसा जानते हैं, वे स्वर्गके ऊपर पुण्यके फलका अनुभव करके इस लोकको अथवा इससे भी हीनतर लोकको प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

कर्मसे उपार्जन किये हुए लोकोंको अनित्य जानकर ब्राह्मण वैराग्यको प्राप्त होवे क्योंकि कर्मसे अकृत–नित्य ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥१४॥

इसलिये जैसे इस लोकमें कर्मसे उत्पन्न हुए भोग्यपदार्थ क्षय हो जाते हैं इसी प्रकार परलोकमें पुण्यसे संपादन किये हुए लोक क्षय हो जाते हैं ॥ १५ ॥

अब, जो ये गृहस्थ ग्राममें इष्ट, पूर्त, दत्त और इसप्रकारकी उपासना करते हैं, वे पितृयानमार्गद्वारा धूम्रको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

इस अग्निमें देवता श्रद्धाको होमते हैं, इस आहुतिसे सोमराजा उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥

यह सोम राजा उन देवताओंका अन्न है, उस चन्द्ररूप अन्नको देवता भक्षण करते हैं अर्थात् उपभोग करते हैं ॥ १८ ॥

अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम् ॥१९॥

(बृह० १ । ४ । १०)

स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥२०॥

(प्रश्न० ५ । ४)

अथ ये शतं पितॄणां जितलोकानामानन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः कर्मदेवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसंपद्यन्ते ॥२१॥

(बृह० ४ । ३ । ३३)

तस्मिन्यावत्सम्पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथेतम् ॥२२॥

(छा० ५ । १० । ५)

प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम् ।
तस्माल्लोकात्पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मणे ॥२३॥

(बृह० ४ । ४ । ६)

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥२४॥

(छा० ५ १० । ७)

जो कोई आत्मासे अन्य देवताकी 'वह अन्य है, मैं अन्य हूँ' ऐसा मानकर, उपासना करता है, वह तत्त्वको नहीं जानता, जैसे पशु वाहन दोहन आदि उपकारोंसे उपभुक्त होता है, इसी प्रकार वह देवताओंका उपभुक्त होता है ॥१९॥

वह सोमलोकमें विभूतिका अनुभव करके फिर लौटता है ॥२०॥

जिसने श्राद्धादि कर्मोंसे पितरोंको संतोष देकर पितृलोकको जीता है, उन पितरोंका जो सौ गुणा आनन्द है वह गन्धर्वलोकका एक आनन्द है और जो गन्धर्वलोकका सौ गुणा आनन्द है वह कर्मदेवोंका एक आनन्द है, अग्निहोत्रादि श्रौत-कर्मोंसे जो देवत्वको प्राप्त होते हैं, वे कर्मदेवता हैं ॥२१॥

उस चन्द्रलोकमें कर्माशयपर्यन्त रहकर जैसे गया था, उसी मार्ग-से लौटता है ॥२२॥

यह मनुष्य इस लोकमें जो कुछ कर्म करता है, परलोकमें उनका फल समाप्त करके उस लोकसे इस लोकमें फिर कर्म करनेके लिये आता है ॥२३॥

उनमें जो पुण्यकर्मवाले हैं वे यहाँ तुरन्त ही रमणीय योनि जैसे कि ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनिको प्राप्त करते हैं और जो पापकर्मवाले हैं, वे तुरन्त ही पापयोनि जैसे कि श्वानयोनि, सूकर-योनि अथवा चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं ॥२४॥

यथाकारी यथाचारी तथा भवति ॥२५॥

(बृह० ४।४।५)

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि ॥२६॥

(तैत्ति० १।११।२)

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति । जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳ स्थानं तेनासौ लोको न संपूर्यते ॥२७॥

(छा० ५।१०।८)

एष ह्येवैनं साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते ॥२८॥

(कौशी० ३।८)

यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति ॥२९॥

(छा० १।१।१०)

तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते ॥३०॥

(बृह० ४।४।२)

आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानः ॥३१॥

(छा० ८।१५।१)

जैसा कर्म करनेवाला और जैसे आचारवाला होता है, वैसा ही हो जाता है ॥२५॥

जो अनिन्दित कर्म हैं, वे तुझे करने चाहिये; अन्य नहीं, जो हमारे आचार्योंके सुचरित हैं, वे ही नियमसे तुझे करने चाहिये ॥२६॥

और जो मनुष्य विद्या और कर्म इन दोनों मार्गोंके साधनोंमेंसे किसी एक भी साधनसे युक्त नहीं होते, वे क्षुद्र प्राणी बारम्बार लौटते रहते हैं यानी बारम्बार जन्म-मरण पाते हैं, यह तीसरा स्थान है, इस-लिये यह लोक भरता नहीं है ॥२७॥

जिसको यह इस लोकसे ऊँचा ले आना चाहता है, उससे शुभकर्म कराता है और जिसको नीचे ले जाना चाहता है, उससे अशुभ कर्म कराता है ॥२८॥

जो कर्म विद्या, श्रद्धा और उपनिषद्से युक्त होकर किया जाता है, वह ही अधिक वीर्यवाला होता है अर्थात् अविद्वान्के कर्मसे अधिक फलवाला होता है ॥२६॥

विद्या और कर्म उस परलोक जानेवालेके साथ जाते हैं ॥३०॥

आचार्यके कुलमेंसे वेदको पढ़कर विधिपूर्वक गुरुका कर्तव्य कर्म करके और धर्मजिज्ञासा समाप्त करके कुटुम्बमें यानी गृहस्थके विहित कर्मोंमें रहकर शुचि प्रदेशमें बैठकर स्वाध्याय करनेसे देहान्तमें ब्रह्म-लोकको प्राप्त होता है ॥३१॥

एतद्वै जरामर्यं सत्रं यदग्निहोत्रं जरया वा ह्येवास्मान्मुच्यते मृत्युना वा ॥ ३२ ॥

(शत० ब्राह्म० १२ । ४ । १ । १)

यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तपः ॥ ३३ ॥

(छा० २ । २३ । १)

विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः परागताः ।
न तत्र दक्षिणायन्ति नाविद्वांसस्तपस्विनः ॥ ३४ ॥

(शत० ब्राह्म० १० । ५, ४ । १६)

अथ य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम् ॥ ३५ ॥

(बृह० ६ । २ । १६)

तौ ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रशशꣳसतुः कर्म हैव तत्प्रशशꣳसतुः ॥ ३६ ॥

(बृह० ३ । २ । १३)

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥३७॥

(कठ० ५ । ७)

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥३८॥

(केन० ४ । ३३ । ८)

जो यह अग्निहोत्र है, वह यह जरा-मरणपर्यन्त पहुँचनेवाला सत्र है क्योंकि इससे पुरुष जरा-मरणसे मुक्त हो जाता है ॥ ३२ ॥

अग्निहोत्रादि यज्ञ, अध्ययन और दान प्रथम तप है ॥ ३३ ॥

विद्यासे उसमें—ब्रह्मलोकमें आरूढ होते हैं, जहाँ कामनाएँ निवृत्त हो जाती हैं, वहाँ कर्मी और अविद्वान् तपस्वी नहीं जाते ॥ ३४ ॥

जो इन उत्तर और दक्षिण मार्गोंको नहीं जानते, वे कीट, पतंग, दंशमशकादि होते हैं ॥ ३५ ॥

उन दोनों याज्ञवल्क्य और आर्तभागने जो कुछ कहा, सो कर्म ही कहा और जो कुछ प्रशंसा की, वह कर्मकी ही प्रशंसा की ॥३६॥

अन्य—अविद्यावाले मूढ शरीर ग्रहण करनेके लिये देहवाले होकर योनिमें प्रवेश करते हैं, दूसरे—अत्यन्त अधम मरनेके पीछे कर्म और ज्ञानके अनुसार वृक्षादि स्थावरभावको प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके उपायभूत तप, दम और कर्म उसकी प्रतिष्ठा यानी आधार हैं, वेद सर्व अङ्ग हैं और सत्य यानी यथार्थ बोलना अथवा ब्रह्म उसका आयतन यानी स्थान है ॥ ३८ ॥

उपासनाबोधकश्रुतयः

यच्छेद्वाङ्मनसि प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥
(कठ० ३। १३)

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥ २॥
(कठ० ६। १०)

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ ३॥
(कठ० ६। ११)

शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-
स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति
विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥ ४॥
(कठ० ६। १६)

तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति॥५॥
(प्रश्न० ५। २)

उपासनाबोधक श्रुतियाँ

जिज्ञासु पुरुष वागादि सर्व इन्द्रियोंको मनमें लय करे, मनको ज्ञानात्मा यानी व्यष्टिबुद्धिमें लय करे, व्यष्टिबुद्धिको महत्में यानी समष्टि-बुद्धिमें लय करे और समष्टिबुद्धिको शान्त आत्मामें लय करे ॥ १ ॥

जब मनसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ ठहर जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, उसको परमगति कहते हैं ॥ २ ॥

ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धिकी (लय-विक्षेपादिसे रहित) स्थिर धारणाको योगी योग मानते हैं। योगी सदा सावधान रहता है। योग ही उत्पत्ति और नाशका कारण है ॥ ३ ॥

हृदयमें एक सौ एक नाड़ियाँ हैं, उनमेंसे एक सुषुम्ना नामकी नाड़ी ब्रह्मरन्ध्रको भेदन करके ब्रह्मलोकको गयी है, उसके द्वारा ऊपर गया हुआ अमृतत्वरूप मोक्षको प्राप्त होता है, अन्य नाड़ियोंसे निकलकर जानेसे अनेक प्रकारके फलोंकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

पिप्पलादने कहा—हे सत्यकाम ! जो यह ॐकार है, वह ही पर और अपर ब्रह्म है, इसलिये विद्वान् इस आलम्बनद्वारा ही अपने अभिलषित एकको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसंपद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संपन्नो महिमानमनुभवति ॥६॥

(प्रश्न० ५ । ३)

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि संपद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥७॥

(प्रश्न० ५ । ४)

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये संपन्नो यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते। एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ॥८॥

(प्रश्न० ५ । ५)

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ।९।
(मुण्डक० २ । २ । ३)

जो एक मात्राका ध्यान करता है, वह उस एक मात्रासे उपास्य-को जानकर शीघ्र ही इस पृथिवीलोकको प्राप्त होता है, पृथिवीलोकमें आये हुए उस उपासकको ऋग्वेदके अभिमानी देवता मनुष्यशरीरमें ले जाते हैं। वह वहाँपर तपसे, ब्रह्मचर्यसे और श्रद्धासे सम्पन्न होकर मनुष्यशरीरकी महिमाका अनुभव करता है यानी राज्यश्रीको प्राप्त होता है ॥६॥

फिर यदि दो मात्राका ध्यान करता है, तो मनमें संपन्न होता है, वह यजुर्वेदके अभिमानी देवताओंसे अन्तरिक्षमें सोमलोकमें ले जाया जाता है, सोमलोककी विभूतिका अनुभव करके वह फिर लौटता है ॥७॥

फिर जो पुरुष इस ॐ अक्षरकी तीन मात्राओंसे इस परम पुरुषका ध्यान करता है, वह तेजोमण्डलरूप सूर्यमें सम्पन्न होता है, जैसे सर्प त्वचासे छूट जाता है, इसी प्रकार वह सर्व पापोंसे छूट जाता है, सामके अभिमानी देवता उसको ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं, वहाँ वह इस जीवघन हिरण्यगर्भसे भी पर, परसे पर, सर्व शरीरोंमें प्रविष्ट हुए पुरुष-को देखता है, (ॐकारकी अकार, उकार और मकार तीन मात्रा हैं, उनके क्रमसे अग्नि, वायु और सूर्य ऋषि हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर देवता हैं। अधिदैवत भूर्भुवः स्वः स्थान हैं। अध्यात्म जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति स्थान हैं। ऋक्, यजु और साम वेद हैं।) ॥ ८ ॥

उपनिषद्रूप अर्थात् प्रणवरूप महाअस्त्र धनुषको लेकर, उसपर उपासनासे तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढ़ावे और ब्रह्मभावकी निष्ठावाले चित्तसे धनुषको खींचकर, हे सौम्य ! उसी अक्षररूप लक्ष्यको बेधे ॥९॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥१०॥

(मुण्ड० २।२।४)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीताथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ॥११॥

(छा० ३।१४।१)

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथा-कामचारो भवति ॥१२॥

(छा० ७।१।५)

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथा-कामचारो भवति ॥१३॥

(छा० ७।२।२)

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥१४॥

(छा० ७।३।२)

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान् वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसि-ध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति १५

(छा० ७।४।२)

प्रणव—ॐकार धनुष है, बाण आत्मा है, उस बाणका लक्ष्य ब्रह्म कहा जाता है, जितेन्द्रिय पुरुषको उसे सावधानतापूर्वक वेधना चाहिये, बाणके समान तन्मय हो जाय ॥१०॥

यह सब निश्चय ब्रह्म ही है, इसीसे जगत् उत्पन्न होता है, इसीमें लय होता है, इसीमें चेष्टा करता है, इसलिये शान्त होकर उपासना करे क्योंकि पुरुष निश्चयमय है इस लोकमें पुरुष जैसा निश्चयवाला होता है, वैसा ही यहाँसे मरकर होता है, इसलिये वह क्रतु यानी पक्का निश्चय करे ॥११॥

जो नामकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह जहाँतक नामकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥१२॥

जो वाणीकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह जहाँतक वाणीकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥१३॥

जो मनकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह जहाँतक मनकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥१४॥

जो कोई संकल्पकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह ध्रुव प्रतिष्ठावाले, व्याकुलतारहित कल्पना किये हुए ध्रुवलोकोंको प्रतिष्ठित और अव्याकुल होकर प्राप्त होता है और जहाँतक संकल्पकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥१५॥

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥१६॥

(छा० ७ । ५ । ३)

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥१७॥

(छा० ७ । ६ । २)

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥१८॥

(छा० ७ । ७ । २)

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥१९॥

(छा० ७ । ८ । २)

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान् पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥२०॥

(छा० ७ । ९ । २)

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान् कामाꣳस्तृप्तिमान् भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥२१॥

(छा० ७ । १० । २)

जो कोई चित्तकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह चित्तसम्बन्धी ध्रुवप्रतिष्ठावाले, व्याकुलतारहित ध्रुवलोकोंको प्रतिष्ठित और अव्याकुल होकर प्राप्त होता है और जहाँतक चित्तकी गति है, वहाँतक स्वेच्छा-चारी होता है ॥ १६ ॥

जो कोई ध्यानकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह जहाँतक ध्यानकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ १७ ॥

जो कोई विज्ञानकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह विज्ञानवाले लोकोंको ज्ञानवाला होकर प्राप्त होता है और जहाँतक विज्ञानकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ १८ ॥

जो कोई बलकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह जहाँतक बलकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ १६ ॥

जो कोई अन्नकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह खाने और पीने-वालोंके लोकोंको प्राप्त होता है और जहाँतक अन्नकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ २० ॥

जो कोई जलोंकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह सर्व कामना-ओंको प्राप्त और तृप्त होता है और जहाँतक जलोंकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ २१ ॥

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान् भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥२२॥

(छा० ७ । ११ । २)

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान् प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥२३॥

(छा० ७ । १२ । २)

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत् स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥२४॥

(छा० ७ । १३ । २)

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृद्ध्यन्त्यमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति ॥२५॥

(छा० ७ । १४ । २)

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः ।
अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य ।

(कैवल्य० ५)

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥

(कैवल्य० ६

जो कोई तेजकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह तेजस्वी तेजवाले, प्रकाशवाले, अन्धकाररहित लोकोंको प्राप्त होता है और जहाँतक तेजकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ २२ ॥

जो कोई आकाशकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह आकाशवाले, प्रकाशवाले, पीडारहित, विस्तीर्ण गतिवाले लोकोंको प्राप्त होता है और जहाँतक आकाशकी गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ २३ ॥

जो कोई स्मरणकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह जहाँतक स्मरण-की गति है, वहाँतक स्वेच्छाचारी होता है ॥ २४ ॥

जो कोई आशाकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, उस आशाके उपासककी सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं, प्रार्थना सफल होती है, जहाँ-तक आशाकी गति है, वहाँतक वह स्वेच्छाचारी होता है ॥ २५ ॥

एकान्त देशमें, पवित्र मन होकर सुखासनसे बैठकर गर्दन, शिर और शरीरको समान रखकर परमहंस-आश्रमवाला संन्यासी सब इन्द्रियोंको रोककर और भक्तिसे अपने गुरुको नमस्कार करके ॥ २६ ॥

रजोगुणरहित विशुद्ध हृदयकमलके मध्यमें निर्मल, शोकरहित, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप, शान्त, अमृत, जगत्के कारण शिवका ध्यान करे ॥ २७ ॥

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात्पाशं दहति पण्डितः ॥२८॥
(कैवल्य० ११)

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ॥२९॥
(श्वेता० १ । १४)

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्माऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ३०
(श्वेता० १ । १५)

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥३१॥
(श्वेता० २ । ८)

समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ।३२।
(श्वेता० २ । १०)

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ३३
(श्वेता० २ । ११)

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥३४॥
(श्वेता० २ । १३)

आत्मा यानी अन्तःकरणको नीचेका अरणि और प्रणवरूप ॐकार-को ऊपरका अरणि करके ज्ञानरूप निर्मंथनके अभ्याससे पण्डित 'मैं' और 'मेरा' रूप फाँसीको जला देता है। (अग्नि उत्पन्न करनेवाले मन्त्रसे काष्ठका संस्कृत नाम अरणि है) ॥ २८ ॥

अपने देहको नीचेकी अरणि करके और प्रणवको ऊपरकी अरणि करके ध्यानरूप निर्मंथनसे छिपी हुई वस्तुके समान देवको देखे ॥ २९ ॥

जैसे तिलोंमें तैल, दधिमें घी, स्रोतमें जल और अरणिमें अग्नि होता है, इसी प्रकार वह जो सत्यसे और तपसे आत्माकी खोज करता है, आत्मामें आत्माको ग्रहण करता है ॥ ३० ॥

शिर, ग्रीवा, काया, तीनोंको सीधा करके, शरीर सम रखकर मनसे इन्द्रियोंको हृदयमें प्रवेश करके विद्वान् ब्रह्मरूपी नावसे संसार-समुद्रसे तर जाते हैं, क्योंकि सब स्रोत भयदायक हैं ॥ ३१ ॥

कंकर, अग्नि, रेत, शब्द, जलाशय आदिसे रहित, मनके अनुकूल, मच्छरादिसे रहित सम, पवित्र, वातरहित स्थानमें गुहा बनावे ॥ ३२ ॥

कुहरा, धूम, सूर्य, अग्नि, वायु, जुगनू, बिजली, स्फटिक, चन्द्रमा, ये रूप ब्रह्मकी अभिव्यक्ति करानेवाले योगके पूर्वमें होते हैं ॥ ३३ ॥

हलकापन, आरोग्यता, अलोलुपता, वर्णकी प्रसन्नता, स्वरका सुन्दर होना, शुभगन्ध और अल्प मूत्र-पुरीष, ये लक्षण योगकी प्रथम प्रवृत्तिके बताये हैं ॥ ३४ ॥

सदाचारबोधकश्रुतयः

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥१॥

(तैत्ति० १ । ११ । १)

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥२॥

(तैत्ति० १ । ११ । २)

ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ॥३॥

(तैत्ति० १ । ११ । ३)

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः ॥४॥

(तैत्ति० १ । ११ । ४)

सदाचारबोधक श्रुतियाँ

वेदका अध्ययन कराकर आचार्य शिष्यको शिक्षा देते हैं—सच बोल। धर्मका आचरण कर। स्वाध्यायसे प्रमाद मत कर। आचार्यके लिये प्रिय धन लाकर दे। प्रजातन्तुका विच्छेद मत कर। सत्यसे प्रमाद न करना चाहिये। धर्मसे प्रमाद न करना चाहिये। आरोग्यादि शरीरकी कुशलसे प्रमाद न करना चाहिये। विभूतिसे प्रमाद न करना चाहिये। पढ़ने-पढ़ानेसे प्रमाद न करना चाहिये, देव और पितृकर्मसे प्रमाद न करना चाहिये ॥१॥

देवके समान माताका पूजनेवाला हो। देवके समान पिताका पूजनेवाला हो। देवके समान आचार्यका पूजनेवाला हो। देवके समान अतिथिका पूजनेवाला हो। जो निर्दोष कर्म हैं वे तुझे करने चाहिये, अन्य दोषयुक्त कर्म न करने चाहिये। जो हमारे आचार्योंके सुन्दर चरित हैं, वे तुझे नियमसे करने चाहिये, दूसरे (कर्म) शापादि, यदि आचार्य करें, तो भी तुझे न करने चाहिये ॥ २ ॥

जो कोई ब्राह्मण हमसे श्रेष्ठ हैं उनको आसनादि देकर तुझे उनका श्रम दूर करना चाहिये। अथवा उनको आसनादि देनेमें साँस भी न लेनी चाहिये। आस्तिक-बुद्धिसे दान देना चाहिये, नास्तिक-बुद्धिसे न देना चाहिये, उदारतासे देना चाहिये, लज्जासे देना चाहिये, शास्त्रके भयसे देना चाहिये, विचारपूर्वक देना चाहिये ॥३॥

यदि कदाचित् तुझे श्रौत और स्मार्त-कर्ममें संशय हो अथवा लौकिक आचारमें संशय हो, तो जो ब्राह्मण विचारशील, कुशल, अनुष्ठानशील, क्रोधरहित यानी शान्त स्वभाववाले और धर्मकी ही कामनावाले हैं, जैसे वे उस कर्ममें अथवा व्यवहारमें वर्तते हों, उसी प्रकार तुझे वर्तना चाहिये ॥ ४ ॥

अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः ॥५॥

(तैत्ति० १।११।४)

एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम् ॥६॥
(तैत्ति० १।११।४)

यदि पातक आदिसे दूषित पुरुषोंमें संशय हो कि व्यवहार करूँ या न करूँ, तो भी उपर्युक्त ब्राह्मण जैसे उनके साथ बर्ताव करते हों, उसी प्रकार तुझे करना चाहिये ॥५॥

यह श्रुतिकी आज्ञा है, यह शिक्षा है, यह वेदका रहस्य है, यह ईश्वरकी आज्ञा है। इसी प्रकार अनुष्ठान करना चाहिये, अवश्य इसी प्रकार अनुष्ठान करना चाहिये ॥६॥

जीवस्वरूपबोधकश्रुतयः

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥ १ ॥

(केन० ४ । ३०)

आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ २ ॥

(कठ० ३ । ३)

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥

(कठ० ३ । ४)

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शाꣳश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥४॥

(कठ० ४ । ३)

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ ५ ॥

(कठ० ४ । ४)

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ।६।

(कठ० ४ । ५)

जीवस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

अब अध्यात्म अर्थात् प्रत्यगात्मके विषयमें कहते हैं। जिस अर्थात् ब्रह्म इस अर्थात् प्रत्यगात्मरूपके प्रति मेरा मन जाता हुआ, स्पर्श करता हुआ-सा वर्तता है और इस मनसे ही इस ब्रह्मको उपस्मरण करता है अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा समीपसे स्मरण करता है और निरन्तर संकल्प भी इस मनसे ही होता है॥ १ ॥

आत्माको रथका स्वामी जाने, शरीरको रथ जाने, बुद्धिको सारथि जाने, मनको बागडोर जाने, इन्द्रियोंको घोड़े कहते हैं और विषयोंको मार्ग कहते हैं। विवेकी पुरुष इन्द्रिय और मनसे युक्त आत्माको भोक्ता कहते हैं॥ २ ॥ ३ ॥

जिस आत्माद्वारा रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और मैथुन जाने जाते हैं, यह वही है। इससे ही सब जाना जाता है, इसके सिवा शेष ही क्या रहता है? कुछ नहीं॥ ४ ॥

स्वप्नका अन्त और जाग्रत्का अन्त, इन दोनोंको जिससे देखता है, उस महान् विभु आत्माको जानकर धीर शोच नहीं करता॥ ५ ॥

जो अधिकारी इस कर्मफलके भोक्ता, जीवात्मा, भूत-भविष्यत्के ईश्वरको समीपसे जानता है, वह आत्माकी रक्षा करनेकी इच्छा नहीं करता, यह वही है॥ ६ ॥

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यते । एतद्वै तत् ।७।
(कठ० ४ । ६)

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥८॥
(कठ० ५ । ३)

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥९॥
(कठ० ५ । ५)

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥१०॥
(कठ० ६ । ७)

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥११॥
(कठ० ६ । ८)

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मंता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परे आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥१२॥
(प्रश्न० ४ । ९)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।१३।
(मुण्ड० ३ । १ । १)

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ।१४।
(मुण्ड० ३ । १ । २)

जो हिरण्यगर्भ पूर्वमें तपसे उत्पन्न जलोंसे पूर्व उत्पन्न हुआ और गुहा—हृदयाकाशमें प्रवेश करके भूतोंके साथ स्थित है, इसको जो जानता है, वह ब्रह्मको ही जानता है, यह वही है ॥ ७ ॥

प्राणको ऊपर ले जाता है, अपानको नीचे ले जाता है। मध्यमें वामन अर्थात् परिच्छिन्नरूपसे भासमान, अथवा फलदाता अथवा भजने योग्य आत्मा बैठा हुआ है। सर्व देवता उसकी उपासना करते हैं ॥ ८ ॥

प्राणसे अथवा अपानसे कोई मनुष्य नहीं जीता, जिसमें ये दोनों स्थित हैं, इस दूसरेसे ही जीते हैं ॥ ९ ॥

इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे महानात्मा अर्थात् समष्टिबुद्धि श्रेष्ठ है, समष्टिबुद्धिसे उत्तम अव्यक्त है, अव्यक्तसे श्रेष्ठ व्यापक और अलिङ्ग पुरुष है। जिसको जानकर जीव अमृतरूप मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

यह ही देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, चखनेवाला, संकल्प करनेवाला, जाननेवाला, करनेवाला और विज्ञानात्मा—जीव पुरुष है। वह परमात्मामें स्थित है ॥ १२ ॥

समान वृक्षपर दो सर्वदा युक्त, सखा पक्षी रहते हैं, इनमेंसे एक स्वादयुक्त फल खाता है और दूसरा खाता नहीं, केवल देखता है। समान यानी एक ही वृक्षमें—छेदनयोग्य शरीरमें निमग्न हुआ जीव दीन-भावसे मोहको प्राप्त होकर शोक करता है। जब योगयुक्त होकर ईश्वरको और उसकी महिमाको जानता है, तब शोकरहित होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

जागरितस्थानो वैश्वानरः । स्वप्नस्थानस्तैजसः । सुषुप्त-स्थानः प्राज्ञः । अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः ॥ १५ ॥
(माण्डू० ९, १०, ११, १२)

आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदा-त्मनोऽपश्यत्सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत्तस्माद-प्येतर्ह्यामन्त्रितोऽहमयमित्येवाग्र उक्त्वाऽथान्यन्नाम प्रब्रूते यदस्य भवति ॥१६॥ (बृह० १।४।१)

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥१७॥ (बृह० ३।७।३)

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्याऽऽपः शरीरं योऽपोन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ।१८।
(बृह० ३।७।४)

योऽग्नौ तिष्ठन्नग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १९ ॥
(बृह० ३।७।५)

यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्य-मृतः ॥२०॥ (बृह० ३।७।७)

य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽ-न्तर्याम्यमृतः ॥२१॥ (बृह० ३।७।१२)

जाग्रत्-स्थानवाला आत्मा वैश्वानर है, स्वप्न-स्थानवाला तैजस है, सुपुप्त-स्थानवाला प्राज्ञ है और अमात्र चौथा व्यवहाररहित है ॥ १५ ॥

यह आत्मा ही पूर्वमें पुरुष-आकारवाला था, इसने पीछे देखा और अपने सिवा दूसरेको न देखकर 'मैं हूँ' ऐसा पूर्वमें बोला, इसलिये 'मैं' नामवाला हुआ, इसीलिये जब बुलाया जाता है, तो यह 'मैं' ऐसा प्रथम कहता है और पीछे जो इसका नाम होता है, उसको कहता है ॥ १६ ॥

जो पृथिवीमें स्थित होकर पृथिवीके भीतर है, जिसको पृथिवी नहीं जानती, जिसका पृथिवी शरीर है, जो पृथिवीके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥ १७ ॥

जो जलोंमें स्थित होकर जलोंके भीतर है, जिसको जल नहीं जानते, जिसका जल शरीर है, जो जलके भीतर रहकर उन्हें नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥ १८ ॥

जो अग्निमें स्थित होकर अग्निके भीतर है, जिसको अग्नि नहीं जानता, जिसका अग्नि शरीर है, जो अग्निके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥ १९ ॥

जो वायुमें स्थित होकर वायुके भीतर है, जिसको वायु नहीं जानता, जिसका वायु शरीर है, जो वायुके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥ २० ॥

जो आकाशमें स्थित होकर आकाशके भीतर है, जिसको आकाश नहीं जानता, जिसका आकाश शरीर है, जो आकाशके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥ २१ ॥

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥२२॥

(बृह० ३ । ७ । १५)

यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥२३॥ (बृह० ३ । ७ । १६)

यश्चक्षुषि तिष्ठ ँश्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः॥२४॥

(बृह० ३ । ७ । १८)

यः श्रोत्रे तिष्ठञ्श्रोत्रादन्तरो यं श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रं शरीरं यः श्रोत्रमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥२५॥ (बृह० ३ । ७ । १९)

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः शरीरं यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥२६॥ (बृह० ३ । ७ । २०)

नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽन्यदार्त्तम् ॥२७॥ (बृह० ३ । ७ । २३)

जो सब भूतोंमें स्थित होकर सब भूतोंके भीतर है, जिसको सर्वभूत नहीं जानते, जिसका सब भूत शरीर है। जो सब भूतोंके भीतर रहकर उन्हें नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥२२॥

जो प्राणमें स्थित होकर प्राणके भीतर है, जिसको प्राण नहीं जानता, जिसका प्राण शरीर है, जो प्राणके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। ॥२३॥

जो नेत्रोंमें स्थित होकर नेत्रके भीतर है, जिसको नेत्र नहीं जानते, जिसका नेत्र शरीर है, जो नेत्रके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। ॥२४॥

जो श्रोत्रमें रहकर श्रोत्रके भीतर है, जिसको श्रोत्र नहीं जानता, जिसका श्रोत्र शरीर है, जो श्रोत्रके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। ॥२५॥

जो मनमें स्थित होकर मनके भीतर है, जिसको मन नहीं जानता, जिसका मन शरीर है, जो मनके भीतर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है ॥२६॥

इसके सिवा दूसरा द्रष्टा नहीं है, इसके सिवा दूसरा श्रोता नहीं है, इसके सिवा दूसरा मन्ता नहीं है, इसके सिवा दूसरा विज्ञाता नहीं है, यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है, इसके सिवा सब नाशवान् है ॥२७॥

ईश्वरस्वरूपबोधकश्रुतयः

ॐ ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥
(ईश० १)

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥२॥
(ईश० ४)

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ३ ॥
(ईश० ५)

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ ४ ॥
(कठ० १ । २ । २१)

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ ५ ॥
(कठ० १ । २ । २५)

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ ६ ॥
(कठ० २ । ४ । ९)

ईश्वरस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

चौदह भुवनोंमें यह जो कुछ जगत् है, वह सब ईश्वरसे व्याप्त है, इसलिये हे शिष्य ! त्यागसे अपनी रक्षा कर, किसीका भी धन मत ले ॥ १ ॥

यह चलनरहित है, एक है, मनसे अधिक वेगवाला है, इसको इन्द्रियाँ नहीं पहुँचतीं । पूर्व ही प्राप्त है, वह बैठा हुआ ही दौड़कर दूसरोंसे आगे निकल जाता है, इसीमें वायु यानी सूत्रात्मा जल यानी कर्मको धारण करता है ॥ २ ॥

वह चलता है, वह नहीं चलता; वह दूर है और पास भी है; वह इस सबके भीतर है और वह ही इस सबके बाहर है ॥ ३ ॥

बैठा हुआ ही दूर चला जाता है । सोता हुआ सर्वत्र चला जाता है, मदवाले और मदरहित देवको मुझ विवेकीके सिवा कौन जान सकता है ? कोई नहीं ॥ ४ ॥

जिसके ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों भोजनरूप हैं, मृत्यु जिसका शाकरूप है, वह जहाँ है और जैसा है, उसको कौन जान सकता है ? कोई नहीं ॥ ५ ॥

जिसमेंसे सूर्य उदय होता है और जिसमें अस्त होता है, उसमें सब देवता अर्पित हैं, उसको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

ॐ ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥७॥
(कठ० २।६।१)

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥८॥
(कठ० २।६।२)

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥९॥
(कठ० २।६।३)

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति।१०।
(प्रश्न० ६।६)

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥११॥
(मुण्ड० १।१।९)

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥१२॥
(मुण्ड० २।१।४)

ऊपर मूलवाला, नीचे शाखावाला यह सनातन अश्वत्थ है। वही शुद्ध है, वही ब्रह्म है और वही अमृत कहलाता है ॥ ७ ॥

यह संपूर्ण जगत् प्राणरूप परमात्मामेंसे निकला हुआ चेष्टा करता है, महान् भयवाला है, वज्रको उठाये हुए है, जो इसको जानते हैं, वे अमृत हो जाते हैं ॥ ८ ॥

इसके भयसे अग्नि तपता है, भयसे सूर्य तपता है, भयसे इन्द्र वायु और पाँचवाँ मृत्यु दौड़ता है ॥९॥

जैसे रथकी नाभिमें अरे, वैसे ही जिसमें १६ कला स्थित हैं, उस वेद्य पुरुषको जानो, जिससे तुमको मृत्युसे व्यथा यानी पीड़ा न हो। प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम ये सोलह कलाएँ हैं ॥१०॥

जो सामान्यतासे सर्वज्ञ है, विशेपतासे सर्ववित् है, जिसका ज्ञानमय तप है, उससे यह ब्रह्म, नाम, रूप और अन्न उत्पन्न होता है ॥११॥

इस ईश्वरका अग्नि शिर है, चन्द्र-सूर्य नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत्र हैं, प्रसिद्ध वेद वाणी है, वायु प्राण है, विश्व हृदय है, पृथिवी पद है, यह सब भूतोंका अन्तरात्मा है ॥१२॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः
सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् ।
पुमान्रेतः सिञ्चति योषितायां
बह्वीः प्रजाः पुरुषात्संप्रसूताः ॥१३॥
(मुण्ड० २ । १ । ५)

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा
यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः
सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥१४॥
(मुण्ड० २ । १ । ६)

तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः
साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि ।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च
श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥१५॥
(मुण्ड० २ । १ । ७)

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मा-
त्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥१६॥
(मुण्ड० २ । १ । ८)

उस ईश्वरसे द्युलोकरूप अग्नि उत्पन्न हुआ, जिस अग्निका सूर्य समिध यानी ईंधन है। द्युलोकरूप अग्निसे निकले हुए चन्द्रमासे मेघरूप दूसरा अग्नि होता है, मेघसे पृथिवीरूप तीसरे अग्निमें व्रीहि यवादि ओषधियाँ होती हैं। ओषधि अन्नरूपसे चौथे अग्निरूप पुरुषमें प्राप्त होकर वीर्य बनती है। चौथा अग्निरूप पुरुष वीर्यको पाँचवें अग्निरूप स्त्रीमें सींचता है, इस प्रकार ईश्वरसे बहुत-सी प्रजा उत्पन्न हुई है ॥१३॥

उस परमेश्वरसे ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, दीक्षा, सर्वयज्ञ, क्रतु, दक्षिणा, संवत्सर, यजमान और लोक जिनमें चन्द्र-सूर्य चलते हैं, ये सब उत्पन्न हुए। कर्ताके नियमविशेषका नाम दीक्षा है, यूपरहित अग्निहोत्रादिका नाम यज्ञ है और यूपसहित अश्वमेधादिका नाम क्रतु है ॥१४॥

उस परमेश्वरसे बहुत प्रकारके देव, साध्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण, अपान, व्रीहियव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि ये उत्पन्न हुए ॥१५॥

उस परमेश्वरसे दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो घ्राण, एक वाणी ये सात प्राण उत्पन्न होते हैं, सात प्राणोंकी वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, सात समिध यानी विषय, सात होम यानी विषयोंके ज्ञान और ये सात लोक यानी इन्द्रियोंके गोलक उत्पन्न होते हैं, जिनमें देहमें स्थित सात-सात प्राण चलते हैं ॥१६॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे-
ऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥१७॥
(मुण्ड० २।१।९)

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां
सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ॥१८॥
(मुण्ड० २।१।१०)

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥१९॥
(माण्डू० ६)

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥२०॥ (तैत्ति० २।१)

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥२१॥
(छान्दो० ५।१८।२)

इस परमेश्वरसे समुद्र, पर्वत उत्पन्न होते हैं, इसमेंसे सिन्धु आदि सर्वरूपकी नदियाँ बहती हैं। इससे सब ओषधि, रस उत्पन्न हुए हैं, जिस रससे यह अन्तरात्मा स्थूल और सूक्ष्म भूतोंसहित स्थित है ॥१७॥

यह परामृत—परब्रह्मरूप पुरुष ही कर्म, तप और वेदरूप विश्व है, जो गुहारूप हृदयमें स्थितको जानता है, वह हे सौम्य! अविद्याकी ग्रन्थिको नष्ट करता है ॥१८॥

यह प्राज्ञ ही सर्वका ईश्वर है, यह सर्वज्ञ है, यह अन्तर्यामी है, यह सबका कारण है, इसीसे भूतोंकी उत्पत्ति और लय होते हैं ॥१९॥

उस इस आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलोंसे पृथिवी, पृथिवीसे ओषधियाँ, ओषधियोंसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष उत्पन्न हुआ। वही यह पुरुष अन्न-रसमय है ॥२०॥

उस इस वैश्वानर आत्माका शिर सुतेजा है। चक्षु विश्वरूप है। प्राण भिन्न मार्गरूप है। पेट बहुल—बड़ा है, वस्ति रयि है, पृथिवी पाद हैं। उर वेदी है, लोम कुश हैं, हृदय गार्हपत्य अग्नि है। मन अन्वाहार्य-पचन अग्नि है, मुख आहवनीय अग्नि है ॥२१॥

उत्पत्तिबोधकश्रुतयः (पुरुषसूक्तम्)

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥

उत्पत्तिबोधक श्रुतियाँ

हजार अर्थात् अनेक शिरवाला, अनेक नेत्रवाला और अनेक पाद-वाला पुरुष है। वह सब तरफसे पृथिवीको स्पर्श करता हुआ दश अङ्गुल उससे अधिक स्थित है ॥१॥

जो कुछ हो चुका, अब है और आगे होनेवाला है, वह सब पुरुष ही है, जो अन्नसे वृद्धिको प्राप्त होता है, वही इस ईश्वरका अमृतत्व है ॥२॥

इतनी यानी विश्वभर तो इसकी महिमा है और पुरुष महिमासे अधिक है, ये सम्पूर्ण भूत उसका एक पाद है और अमृतरूप तीन पाद स्वर्गमें हैं ॥३॥

पुरुष तीन पादसे ऊर्ध्व विद्यमान रहता है, एक पाद यहाँ है। उस एक पादसे नाना प्रकारके भोग्य और भोक्तारूपसे स्वयं ही विस्तारको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

उस पुरुषसे पीछे विराट् भगवान् उत्पन्न हुए और विराट् भगवान्के देहसे पुरुष हुआ, वह उत्पन्न होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ, पश्चात् भूमिको उत्पन्न किया और फिर पुर यानी शरीरोंको उत्पन्न किया ॥५॥

उस सर्वात्मक यज्ञसे जलविन्दु, घी आदि हवनकी सब सामग्री हुई। उससे हवामें उड़नेवाले पक्षी और वन तथा ग्राममें रहनेवाले पशु हुए ॥ ६ ॥

उस सर्वहुत यज्ञपुरुषसे, ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए, उसीसे छन्द उत्पन्न हुए और उसीसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ १० ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष्ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ अकल्पयन् ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्तसमिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः

उससे घोड़े उत्पन्न हुए, जो ऊपर-नीचे दोनों तरफ दाँतवाले हैं, उस पुरुषसे गौएँ उत्पन्न हुईं और उससे बकरी उत्पन्न हुई। अश्व, गौ और बकरी सब पशुओंके उपलक्षक हैं ॥ ८ ॥

उस प्रथम उत्पन्न पुरुषको मन्त्रसे पवित्र कर देवता, साध्य और ऋषि मानस-यज्ञ सम्पादन करते हैं ॥ ९ ॥

जिस पुरुषको कितनी प्रकारकी कल्पना करके प्रजापतिने धारण किया, इसका मुख क्या है, भुजाएँ क्या हैं, ऊरू और पाद क्या कहलाते हैं ? ॥ १० ॥

ब्राह्मण इसके मुख हुए, क्षत्रिय भुजाओंसे उत्पन्न हुए, जो वैश्य हैं, वे उसकी ऊरू—जंघा हैं और शूद्र पदोंसे उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥

मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, चक्षुओंसे सूर्य उत्पन्न हुआ, श्रोत्रसे वायु और प्राण उत्पन्न हुए और मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

नाभिसे अन्तरिक्ष हुआ, शिरमें स्वर्ग वर्तता है। पदोंसे पृथिवीकी और श्रोत्रसे दिशा और लोकोंकी कल्पना करता हुआ ॥ १३ ॥

जब पुरुष और हविषसे देवताओंने यज्ञ किया, तब वसन्त उसका घी हुआ, ग्रीष्म समिधा हुआ और शरत् हवि हुआ ॥ १४ ॥

सात सागर इसके परिधि हैं और बारह मास, पाँच ऋतु, तीन लोक ये सब मिलकर इक्कीस समिध किये। देवता जो यज्ञ करते हुए पुरुष पशुको बाँधते हुए। (हेमन्त और शिशिरको मिलाकर पाँच ऋतु कही हैं) ॥ १५ ॥

देवताओंने यज्ञसे यज्ञ किया, वे प्रथम धर्म हुए। वे निश्चय: स्वर्गकी महिमाको प्राप्त होते हैं, जहाँ पूर्वमें साध्य देवता हैं ॥ १६ ॥

सद्रूपबोधकश्रुतयः

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तद्धैक आहु-रसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत। कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳ स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥१॥

(छान्दो० ६।२।१, २)

सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥२॥

(छान्दो० ६।८।४)

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ॥३॥

(छान्दो० ६।८।७)

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥४॥

(कठ० २।१६)

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥५॥

(कठ० २।१८)

सद्रूपबोधक श्रुतियाँ

पिताने कहा–हे सौम्य ! यह नामरूपात्मक जगत् सृष्टिसे पूर्व एक अद्वितीय सत् ही था, कोई कहता है कि यह एक अद्वितीय असत् ही था, असत्से सत् उत्पन्न होता है, परन्तु हे सौम्य ! यह कैसे हो सकता है ? असत्से सत् कैसे उत्पन्न हो सकता है ? नहीं हो सकता, इसलिये पूर्वमें यह अद्वितीय सत् ही था ॥१॥

हे सौम्य ! ये सम्पूर्ण प्रजा सत् मूलवाली, सत् आयतनवाली और सत् प्रतिष्ठावाली हैं। मूल नाम कारणका है, आयतन नाम आश्रयका है, और प्रतिष्ठा नाम समाप्तिका है ॥२॥

वह जो यह उपर्युक्त (अत्यन्त सूक्ष्म) सत् है, यह सबका आत्मा है, वह सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतु ! वह तू है ॥३॥

यह ही अक्षर ब्रह्म है, यह ही परम अक्षर है, इस अक्षरको जानकर जो उसकी इच्छा करता है, वह ही हो जाता है ॥४॥

नित्य चैतन्यरूप आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, न यह किसीसे हुआ है और न इससे कोई हुआ है अर्थात् इसका कारण या कार्य नहीं है, यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है और पुराण है, शरीरके मरनेसे मरता नहीं है ॥५॥

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं
　　यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥
(मुण्ड० १।१।६)

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावका-
　　द्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथा क्षराद्विविधाः सोम्य भावाः
　　प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥७॥
(मुण्ड० २।१।१)

असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति ॥८॥
(तैत्ति० २।६)

स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयꣳ हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ॥९॥
(बृह० ४।४।२५)

अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा ॥१०॥
(बृह० ४।५।१४)

तद्वै तदेतदेव तदास सत्यमेव स यो हैतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति जयतीमांल्लोकाञ्जित इन्न्व-सावसद्य एवमेतन्महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति सत्यꣳ ह्येव ब्रह्म ॥११॥
(बृह० ५।४।१)

वह नित्य, पूर्ण, सर्वव्यापक, बहुत ही सूक्ष्म और अव्यय है, जिस भूतोंके कारणको धीर पुरुष देखते हैं ॥६॥

वह यह अक्षर सत्य है, जैसे जलती हुई अग्निसे हजारों चिनगारियाँ एक ही रूपवाली उत्पन्न होती हैं, इसी प्रकारसे हे सौम्य ! अक्षरमेंसे अनेक प्रकारके भाव उत्पन्न होते हैं और उसीमें लय हो जाते हैं ॥७॥

'ब्रह्म असत् है' ऐसा जो जानता है, वह असत् ही हो जाता है, 'ब्रह्म है' ऐसा जो जानता है, तो इसको ब्रह्मवेत्ता सन्त यानी ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥ ८ ॥

वह यह महान् अजन्मा आत्मा अजर, अमृत, अभय है, ब्रह्म अभय है, निश्चय ब्रह्म अभय है, जो इस प्रकार जानता है, वह निश्चय ब्रह्म ही हो जाता है ॥ ९ ॥

अरी मैत्रेयी ! यह आत्मा नाशरहित धर्मवाला है ॥ १० ॥

वह ही वह यह हृदय था, वह सत्य ही था, जो इस महान् पूज्य प्रथम उत्पन्न हुएको 'सत्य ब्रह्म है' इस प्रकार जानता है, वह इन लोकोंको जीतता है और जैसे सत्य ब्रह्म मिथ्या शत्रुओंको जीत लेता है, इसी प्रकार इस उपासकके शत्रु असत्—नष्ट हो जाते हैं, जो इस प्रकार इस प्रथमज, महान् पूज्यको जानता है, सत्य ब्रह्म है, सत्य ही ब्रह्म है ॥ ११ ॥

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ॥१२॥
(कैवल्य० १६)

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥
(श्वे० ६ । १३)

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१४॥
(कठ० ६ । १२)

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥१५॥
(कठ० ६ । १३)

जो परब्रह्म सर्वका आत्मा है, विश्वका महान् आधार है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है और नित्य है, वह तू ही है, वह तू ही है ॥ १२ ॥

नित्योंका नित्य है, चेतनोंका चेतन है, बहुतोंमें एक है, जो कामनाओंको धारण करता है, वह कारण है, सांख्य-योगादिसे गम्य है, देवको जानकर सब पाशोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १३ ॥

यह आत्मा वाणीसे, मनसे और नेत्रोंसे प्राप्त नहीं हो सकता। 'है' ऐसा कहनेके सिवा और वह कैसे जाना जा सकता है ? नहीं जाना जा सकता ॥ १४ ॥

'है' इस प्रकार आत्मा प्रथम जानने योग्य है, फिर तत्त्वभावसे जानने योग्य है, इन दोनोंमें भी 'है' इस प्रकारसे जाने हुएका ही तत्त्व-भाव प्रसन्न होता है यानी अधिकारीकी बुद्धिमें तत्त्वका आविर्भाव होता है ॥ १५ ॥

चिद्रूपबोधकश्रुतयः

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥१॥
(कठ० ४ । ३)

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥२॥
(कठ० ५ । ८)

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥३॥
(कठ० ५ । १५ मुण्डक० २ । २ । १०)

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परे आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥४॥
(प्रश्न० ४ । ९)

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥५॥
(मुण्ड० १ । १ । ९)

चिद्रूपबोधक श्रुतियाँ

यह वह आत्मा है, जिससे रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और मैथुन जाननेमें आते हैं, सब इसीसे जाना जाता है, इस लोकमें आत्माके जाननेसे क्या शेष रहता है ? यानी कुछ भी शेष नहीं रहता ॥ १ ॥

जो यह स्वप्रकाश चिद्रूप आत्मा अपनी इच्छानुसार स्वप्नमें पदार्थोंको बनाता हुआ इन्द्रियोंके सो जानेपर जागता रहता है वह ही शुद्ध है, वह ही ब्रह्म है और वह ही अमृत कहलाता है ॥ २ ॥

उस आत्मरूप ब्रह्ममें सूर्य नहीं भासता, चन्द्र-तारे नहीं भासते, यह बिजली नहीं भासती, यह अग्नि कैसे भासे ? उसके प्रकाशनके पीछे ही सब भासते हैं, उसके भास यानी प्रकाशसे यह सब भासता है ॥ ३ ॥

वही देखनेवाला है, छूनेवाला है, सुननेवाला है, सूँघनेवाला है, चखनेवाला है, मनन करनेवाला है, जाननेवाला है, कर्ता है, विज्ञान-स्वरूप है, पुरुष है; जो उसको जानता है, वह परमात्मामें स्थित होता है ॥ ४ ॥

जो सर्वज्ञ है, सर्वविद् है, जिसका ज्ञानमय तप है, इससे यह ब्रह्मा, नाम, रूप और अन्न उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ६ ॥

(मुण्ड० २ । २ । ९)

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥७॥

(मुण्ड० ३ । १ । ७)

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥८॥

(मुण्ड० ३ । २ । १)

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे । कतरः स आत्मा येन वा रूपं पश्यति । येन वा शब्दं शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति । येन वा वाचं व्याकरोति । येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥९॥

(ऐतरे० ३ । १)

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥१०॥

(ऐतरे० ३ । २)

प्रकाशमय, आनन्दमय परम कोशमें अविद्यारहित, कलारहित ब्रह्म है, वह शुद्ध है, ज्योतियोंका ज्योति है, जिसको आत्मज्ञानी जानते हैं ॥ ६ ॥

वह ब्रह्म महान् है, स्वप्रकाशरूप है, अचिन्त्यरूप है, सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म भासता है, वह दूरसे भी दूर है और पाससे भी पास है, वह आप ही इस बुद्धिरूपी गुहामें बैठकर देखता है ॥ ७ ॥

वह विद्वान् इस परम ब्रह्म परम धामको जानता है, जिसमें स्थित विश्व चमकता है, उस विद्वान्की जो अकामी पुरुष उपासना करते हैं, वे धीर इस वीर्यको उल्लंघन कर जाते हैं यानी फिर जन्म नहीं लेते ॥ ८ ॥

प्रश्न—यह आत्मा कौन है, जिसकी हम उपासना करते हैं? वह कौन-सा आत्मा है? क्या वह आत्मा ही है जिससे मनुष्य रूप देखता है, जिससे शब्द सुनता है, जिससे गन्ध सूँघता है, जिससे वचन बोलता है, जिससे स्वाद-अस्वादको जानता है? ॥९॥

उत्तर—जो यह हृदय है, मन है, संज्ञान है, आज्ञान है, विज्ञान है, प्रज्ञान है, मेधा है, दृष्टि है, धृति है, मति है, मनीषा है, जूति है, स्मृति है, संकल्प है, क्रतु है, असु है, काम है, वश है, ये सब ही प्रज्ञानके नाम हैं, हृदय नाम बुद्धिका है, मन संकल्प-विकल्पात्मक वृत्तिका नाम है, विज्ञान नाम चेतनताका है, आज्ञान नाम ईश्वर-भावका है, विज्ञान नाम जाननेका है, प्रज्ञान नाम प्रतिभासका है, मेधा नाम धारण-शक्तिका है, दृष्टि नाम देखनेका है, धृति नाम धैर्यका है, मति नाम मनन करनेका है, मनीषा नाम मनको स्वाधीन करनेका है, जूति नाम दुःखाकार वृत्तिका है, स्मृति नाम स्मरणका है, संकल्प नाम कल्पनाका है, क्रतु नाम निश्चयका, असु-नाम प्राण-वृत्तिका है, काम-नाम इच्छाका है, वश नाम स्त्री-सम्पर्ककी इच्छाका है ॥१०॥

अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः ॥११॥

(बृह० २।५।१९)

येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् ॥१२॥

(बृह० २।४।१४)

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥१३॥

(श्वेताश्व० ६।११)

यह आत्मा ब्रह्म सबका अनुभव करनेवाला है ॥११॥

जिससे पुरुष सबको जानता है, इसको किससे जाने ! ॥१२॥

एक देव सब भूतोंमें गुप्त है, सबमें व्यापक है, सब भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंके फलका देनेवाला है, सर्व भूतोंका वासस्थान है, साक्षी है, चेतन है, केवल है और निर्गुण है ॥१३॥

सुखरूपबोधकश्रुतयः

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।१।
(तैत्ति० ३ । ६)

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः ॥२॥ (छान्दो० ७ । २३ । १)

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥३॥
(छान्दो० ७ । २४ । १)

जात एव न जायते को न्वेनं जनयेत्पुनः । विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं तिष्ठमानस्य तद्विद इति
(बृह० ३।६।२८-७)

रसो वै सः । रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति । को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् । यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष ह्येवाऽऽनन्दयाति ॥५॥ (तैत्ति० २ । ७)

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥६॥
(तैत्ति० २ । ९)

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ॥७॥ (तैत्ति० ३ । ६)

एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ।८।
(बृह० ४ । ३ । ३२)

सुखरूपबोधक श्रुतियाँ

आनन्दसे ही निश्चय ये प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्दसे ही उत्पन्न हुए जीते हैं और अन्तमें आनन्दमें ही प्रवेश कर जाते हैं ॥१॥

जो भूमा यानी महान् निरतिशय है, वह सुख है, अल्पमें सुख नहीं है, भूमा ही सुखरूप है, भूमा ही तुझको जानना चाहिये ॥२॥

जहाँ अन्यको नहीं देखता, अन्यको नहीं सुनता, अन्यको नहीं जानता, वह भूमा है और जहाँ अन्यको देखता है, अन्यको सुनता है, अन्यको जानता है, वह अल्प है। जो भूमा है, वह अमृत है, जो अल्प है, वह मरा हुआ है। भगवन्! वह भूमा किसमें स्थित है? अपनी महिमा यानी विभूतिमें स्थित है अथवा महिमामें स्थित नहीं है ॥३॥

उत्पन्न हुआ तो उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न हुएको फिर कौन उत्पन्न करे, विज्ञान आनन्दरूप ब्रह्म धनके दाताकी परम गति है और उस ब्रह्ममें स्थित ब्रह्मवेत्ताकी परिसमाप्तिरूप परम गति है ॥४॥

वह निश्चय रस है, इस रसको पाकर ही आनन्दवाला होता है, जो हृदयाकाशमें यह आनन्द न हो, तो कौन श्वास ले, कौन प्रश्वास ले, यही आनन्द देता है ॥५॥

ब्रह्मके आनन्दको जो जानता है, उसको किसीसे भय नहीं होता ॥६॥

आनन्द ब्रह्म है, ऐसा जाने ॥७॥

इस आनन्दकी मात्रासे ही अन्य प्राणी जीते हैं ॥८॥

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥९॥ (बृह० २।४।५)

ॐ कं ब्रह्म खं ब्रह्म ॥१०॥
(छान्दो० ४।१०।५)

तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्माद-न्तरतरं यदयमात्मा ॥११॥ (बृह० १।४।८)

स यो मनुष्याणाꣳ राद्धः समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मानुष्यकैर्भोगैः सम्पन्नतमः स मनुष्याणां परम आनन्दोऽथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः स एकः पितॄणां जितलोका-नामानन्दोऽथ ये शतं पितॄणां जितलोकानामानन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः कर्मदेवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसम्पद्यन्तेऽथ ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामा-नन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतमाजान-देवानामानन्दाः स एकः प्रजापतिलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एको ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकाम-हतोऽथैष एव परम आनन्द एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥१२॥ (बृह० ४।३।३३)

याज्ञवल्क्यने कहा—अरी मैत्रेयी ! सबके लिये सब प्यारे नहीं होते, आत्माके लिये ही सब प्यारे होते हैं ॥९॥

ॐ सुख ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है ॥१०॥

वह यह प्रिय है, पुत्रसे प्रिय है, धनसे प्रिय है, अन्य सबसे अत्यन्त ही भीतर है, जो यह आत्मा है ॥११॥

याज्ञवल्क्यने कहा—हे सम्राट् ! जो मनुष्योंका अधिपति होता है, वह मनुष्योंमें अधिक समृद्धिवाला होता है क्योंकि वह सम्पूर्ण मनुष्योंके भोगने योग्य भोगोंसे सम्पन्नतम होता है, वह मनुष्योंका परम आनन्द है। जो सौ गुणा मनुष्योंका आनन्द है, वह पितृलोकको जीतनेवालोंका एक आनन्द है। पितृलोक जीतनेवालोंका जो सौ गुणा आनन्द है, वह गन्धर्वलोकका एक गुणा आनन्द है। जो गन्धर्वलोकका सौ गुणा आनन्द है, वह कर्म-देवताओंका एक गुणा आनन्द है। जो कर्मसे देवत्व प्राप्त करते हैं, उनका नाम कर्म-देवता है। जो कर्म-देवताओंका सौ गुणा आनन्द है, वह आजानदेवताओंका एक गुणा आनन्द है। वह ही पाप-रहित अकाम श्रोत्रियका आनन्द है। जो आजानदेवताओंका सौ गुणा आनन्द है, वह प्रजापतिलोकका एक गुणा आनन्द है। वह ही पाप-रहित अकाम श्रोत्रियका आनन्द है। प्रजापति-लोकका जो सौ गुणा आनन्द है, वह ब्रह्मलोकका एक आनन्द है। वह ही पापरहित, अकाम श्रोत्रियका आनन्द है। वह परम आनन्द यानी निरतिशय आनन्द है, तृष्णारहित श्रोत्रिय प्रत्यक्ष ब्रह्मलोक ही है ॥१२॥

श्रीरामस्वरूपबोधकश्रुतयः

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥ १ ॥
(राम र० १।६)

सनकाद्या मुनयो हनूमन्तं पप्रच्छुः—श्रीराममन्त्रार्थमनुब्रूहीति । हनूमान्होवाच—

सर्वेषु राममन्त्रेषु मन्त्रराजः षडक्षरः ।
एकधा द्विविधा त्रेधा चतुर्धा पञ्चधा तथा ॥
षट् सप्तधाष्टधा चैव बहुधायं व्यवस्थितः ।
षडक्षरस्य माहात्म्यं शिवो जानाति तत्त्वतः ॥ २ ॥
(रा० र० ५।१)

श्रीराममन्त्रराजस्य सम्यगर्थोऽयमुच्यते ।
नारायणाष्टाक्षरे च शिवपञ्चाक्षरे तथा ।
सार्थकार्णद्वयं रामो रमन्ते यत्र योगिनः ॥ ३ ॥
(रा० र० ५।२)

श्रीरामस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

राम ही परम ब्रह्म हैं, राम ही परंतप हैं, राम ही परम तत्त्व हैं और राम ही ब्रह्मतारक हैं ॥१॥

सनकादि मुनियोंने हनूमान्‌जीसे पूछा—श्रीराममन्त्रका अर्थ कहिये। हनूमान्‌जी बोले—सब राममन्त्रोंमें छः अक्षरका मन्त्र मन्त्रराज है। यह एक प्रकारका, दो प्रकारका, तीन प्रकारका, चार प्रकारका, पाँच प्रकारका, छः, सात, आठ और बहुत प्रकारका है, षडक्षरका माहात्म्य शिव ही तत्त्वसे जानते हैं ॥ २ ॥

श्रीराम-मन्त्रराजका सम्यक् अर्थ कहा जाता है, नारायण-अक्षरमें और शिव-पञ्चाक्षरमें दो अक्षर 'राम' जिनमें योगी रमण करते हैं, सार्थक है ॥ ३ ॥

रकारो वह्निवचनः प्रकाशः पर्यवस्यति ॥
सच्चिदानन्दरूपोऽस्य परमात्मार्थ उच्यते ।
व्यञ्जनं निष्कलं ब्रह्म प्राणो मायेति च स्वरः ॥
व्यञ्जनैः स्वरसंयोगं विद्धि तत्प्राणयोजनम् ।
रेफो ज्योतिर्मयः तस्मिन् कृतमाकारयोजनम् ॥
मकारोऽभ्युदयार्थत्वात्स मायेति च कीर्त्यते ।
सोऽयं बीजं स्वकं यस्मात्समायं ब्रह्म चोच्यते ॥ ४ ॥
(रा० र० १ । ३)

स बिन्दुः सोऽपि पुरुषः शिवसूर्येन्दुरूपवान् ।
ज्योतिस्तस्य शिखारूपं नादः स प्रकृतिर्मतः ॥
प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ समायाद्ब्रह्मणः स्मृतौ ।
बिन्दुनादात्मकं बीजं वह्निसोमकलात्मकम् ॥
अग्नीषोमात्मकं रूपं रामबीजे प्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥
(रा० र० १ । ४)

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ।
बीजोक्तमुभयार्थत्वं रामनामनि दृश्यते ॥
बीजं मायाविनिर्मुक्तं परं ब्रह्मेति कीर्त्यते ।
मुक्तिदं साधकानां च मकारो मुक्तिदो मतः ॥
मारूपत्वादतो रामो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ६ ॥
(रा० र० १ । ५)

रकार वह्निवाचक प्रकाशरूप है, इसका सच्चिदानन्दरूप परमात्मा अर्थ है, व्यञ्जन कलारहित ब्रह्म है और स्वर प्राणरूप माया है। व्यञ्जनोंसे स्वरका जो संयोग है, इसको प्राणका योग जानो, ज्योतिर्मय रेफमें अकारका योग है। मकार अभ्युदयके अर्थ है, इसलिये वह माया कहलाता है, सो और अयं स्वकं रूप बीज है, इसलिये यह मायासहित ब्रह्म कहलाता है ॥ ४ ॥

बिन्दुसहित सो पुरुष शिव, सूर्य और चन्द्ररूप है, इसकी ज्योति शिखारूप है, सो नाद-प्रकृति माना गया है। प्रकृति और पुरुष दोनों मायासहित ब्रह्मके स्मरणमें आये हैं, बिन्दु और नादरूप बीज अग्नि और सोमकी कलारूप हैं। अग्नि सोमात्मकरूप राम-बीजमें स्थित है ॥५॥

जैसे वटके बीजमें प्राकृत और महावृक्ष स्थित होता है इसी प्रकार राम-बीजमें यह चराचर जगत् स्थित है, बीजमें कहे हुए दोनों प्रकारके अर्थ रामनाममें देखनेमें आते हैं। मायासे मुक्त हुआ बीज परब्रह्म कहलाता है, साधकोंको मुक्ति देनेवाला है, मकार मुक्ति देनेवाला माना है। इसलिये राम मकाररूपसे भुक्ति और मुक्तिफलके देनेवाले हैं ॥६॥

आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वं पदार्थवान् ॥
तयोः संयोजनमसीत्यर्थे तत्त्वविदो विदुः ।
नमस्त्वमर्थो विज्ञेयो रामस्तत्पदमुच्यते ॥
असीत्यर्थे चतुर्थी स्यादेवं मन्त्रेषु योजयेत् ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु केवलं मुक्तिदं यतः ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्तस्मादप्यतिरिच्यते ॥७॥

(रा० र० ५।६)

मनुष्वेतेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम् ॥
मुमुक्षूणां विरक्तानां तथा चाश्रमवासिनाम् ।
प्रणवत्वात्सदा ध्येयो यतीनां च विशेषतः ।
राममन्त्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न संशयः ॥८॥

(रा० र० ५।७)

सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये ।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥९॥

(रा० र० ५।८)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥१०॥

(रा० पू० ता० १।६)

सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त । स्थितानि च प्रहितान्येव तेषु ततो रामो मानवो माययाध्यात् ॥११॥ (रा० पू० ता० २।४)

नायका रा तत्पदार्थ है और मकार त्वं पदार्थ है, दोनोंका संयोग 'असि' इस अर्थमें है, इसको तत्त्ववित् जानते हैं, 'नमः' त्वंका अर्थ जानना चाहिये, राम तत्पद कहलाता है। 'असि' इस अर्थमें चतुर्थी विभक्ति है, इसप्रकार मन्त्रोंमें योजना करे, क्योंकि 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य ही केवल मुक्तिके देनेवाले हैं। यह भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला है, उससे भी श्रेष्ठ है ॥७॥

इन मन्त्रोंमें सब देहधारियोंका अधिकार है। मुमुक्षुओंको, विरक्तोंको तथा आश्रमवासियोंको प्रणवरूप होनेसे सदा ध्येय है और विशेपरूपसे यतियोंको ध्येय है, राम-मन्त्रका अर्थ जाननेवाला जीवन्मुक्त है, इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

'राम मैं हूँ' इसप्रकार तत्त्वसे जो सदा जानते हैं, वे निश्चय संसारी नहीं हैं, राम ही हैं, इसमें संशय नहीं है ॥९॥

अनन्त, नित्यानन्द चिदात्मामें योगी रमण करते हैं, इसप्रकार राम-पदसे परंब्रह्म कहा जाता है ॥१०॥

सीताराम दोनों तन्मय यहाँ पूज्य हैं, इनसे चौदह भुवन उत्पन्न हुए हैं, इनमें ही स्थित हैं, इन्हींमें लय होते हैं, इसलिये राम मायासे मानव हुए ॥११॥

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः ।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥
श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदाधारकारिणी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ।
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥१२॥
(रा० उ० ता०)

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा ।
यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकचिदात्मा भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः॥१३
(रा० उ० ता०)

स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्यैकचिन्मयः ।
तदेव रामचन्द्रस्य मन्त्रोराद्यक्षरः स्मृतः ॥१४॥

अखण्डैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः ।
रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दचिदात्मकः ॥१५॥

नमःपदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम् ।
सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षवः ॥१६॥
(रा० उ० ता०)

अकार-अक्षरसे विश्वभावन सौमित्रि उत्पन्न हुए, उकार-अक्षरसे तैजसरूप शत्रुघ्न उत्पन्न हुए, मकार-अक्षरसे प्राज्ञरूप भरत उत्पन्न हुए। ब्रह्मानन्द मुख्य विग्रह अर्धमात्रारूप राम हैं, श्रीरामकी समीपतासे जगत्का आधार, सर्व भूतोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली वह सीता उत्पन्न होती है. उसे मूल प्रकृति जानना चाहिये, प्रणवरूप होनेसे वह प्रकृति है, ऐसा ब्रह्मवादी कहते हैं ॥ १२ ॥

जो निश्चय प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र हैं, वे भगवान् अद्वैत, परमानन्द आत्मा हैं, जो सच्चिदानन्द हैं, अद्वैत हैं, एक हैं, चिदात्मा हैं, भूः, भुवः और स्वःरूप हैं, उनके लिये ही नमस्कार है, नमस्कार है ॥ १३ ॥

स्वप्रकाश, परं ज्योति, स्वानुभवरूप एक चिन्मय, यह श्रीरामचन्द्रके मन्त्रका आदि अक्षर है ॥ १४ ॥

अखण्ड, एकरस, आनन्द तारक ब्रह्मका वाचक 'रामाय' सत्य, आनन्द, चिदात्मक जानना चाहिये ॥ १५ ॥

'नम' पदको पूर्ण आनन्द, एक और कारण जानना चाहिये। सर्व देवता और मुमुक्षु इस पदको हृदयमें नमस्कार करते हैं। यह षडक्षर मन्त्रका अर्थ है ॥१६॥

नमो वेदादिरूपाय ओंकाराय नमो नमः।
रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥१७॥
(रा० पू० ता०)

जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने।
भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे ॥१८॥
(रा० पू० ता०)

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते ॥१९॥
(रा० पू० ता०)

वेदादिरूपके लिये नमस्कार है, ओंकारके लिये नमस्कार है, लक्ष्मी-धरके लिये, रामके लिये, आत्ममूर्ति श्रीरामके लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥

जानकीकी देहको भूषित करनेवाले, राक्षसोंको मारनेवाले, शुभ अंगवाले, भद्र, रघुवीर, रावणके मारनेवालेको नमस्कार है ॥ १८ ॥

हे रामभद्र ! बड़े धनुषवाले ! रघुवीर ! नृपोत्तम ! रावणका अन्त करनेवाले ! आप हमारी रक्षा कीजिये और लक्ष्मी भी दीजिये ॥ १९ ॥

श्रीकृष्णस्वरूपबोधकश्रुतयः

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥
गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम् ।
दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।
चिन्तयञ्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥१॥

(गो० पू० ता०)

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य
एकोऽपि सन्बहुधा यो विभाति ।
तं पीठं येऽनुभजन्ति धीरा-
स्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तं पीठगं येऽनुभजन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥
एतद्विष्णोः परमं पदं ये
नित्योद्युक्तास्तं यजन्ति न कामात् ।
तेषामसौ गोपरूपः प्रयत्नात्
प्रकाशयेदात्मपदं तदेव ॥

श्रीकृष्णस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

श्रेष्ठ कमल-से नेत्रवाले, मेघकी-सी कान्तिवाले, विद्युत्-से वस्त्रवाले, दो भुजावाले, ज्ञानमुद्रासे युक्त, वनमाली, ईश्वर, गोप, गोपी और गौओंकी रक्षा करनेवाले, कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए, दिव्य अलंकारोंसे युक्त, रत्नकमलके बीचमें बैठे हुए, कालिन्दी-जलकी लहरोंसहित पवनसे सेवित कृष्णका जो चित्तसे चिन्तन करता है, वह संसारसे मुक्त होता है ॥१॥

एक, वश करनेवाला, सर्वव्यापी कृष्ण, पूज्य जो एक होकर भी बहुत प्रकारसे भासता है, उस आश्रयको जो धीर भजते हैं, उनको ही सनातनी सिद्धि प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं होती। नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन, जो एक ही बहुत-सी कामनाओंको धारण करता है, इस स्थिरको जो धीर भजते हैं, उनको सनातन सुख प्राप्त होता है, दूसरोंको नहीं होता। इस विष्णुके परम पदको जो नित्य उत्साहसे पूजते हैं, कामनाओंको नहीं पूजते, इनके लिये वह गोपरूप उसी आत्म-पदको यत्नपूर्वक प्रकाशित करता है॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो विद्यां तस्मै गोपयति स्म कृष्णः ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुः शरणं व्रजेत् ॥२॥
(गो० पू० ता०)

ओंकारेणान्तरितं ये जपन्ति
गोविन्दस्य पञ्चपदं मनुम् ।
तेषामसौ दर्शयेदात्मरूपं
तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्यै ॥३॥
(गो० पू० ता०)

ॐ नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४॥
(गो० पू० ता०)

नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५॥
(गो० पू० ता०)

नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥६॥
(गो० पू० ता०)

बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥७॥
(गो० पू० ता०)

जो ब्रह्माको पूर्वमें धारण करता है, जो कृष्ण उस ब्रह्माके प्रति विद्याको देता है, इस आत्मबुद्धिके प्रकाश करनेवाले देवकी शरणमें मुमुक्षु जावे ॥२॥

ओंकारसहित गोविन्द पाँच पदवाले मन्त्रको जो जपते हैं, इनको वे अपना रूप दिखलाते हैं, इसलिये मुमुक्षु नित्य शान्तिके अर्थ इसका अभ्यास करे ॥३॥

विश्वस्वरूपके लिये नमस्कार है, विश्वकी स्थिति और अन्तके कारण, विश्वके ईश्वर, विश्वरूप गोविन्दके लिये नमस्कार है, नमस्कार है ॥४॥

विज्ञानरूपके लिये नमस्कार है, परमानन्दरूप, कृष्ण, गोपीनाथ, गोविन्दके लिये नमस्कार है, नमस्कार है ॥५॥

कमलनेत्रके लिये नमस्कार है, कमलमालीके लिये नमस्कार है, कमलनाभिके लिये नमस्कार है, कमलापतिके लिये नमस्कार है ॥६॥

बर्हापीडको सुन्दर लगनेवाले, अकुण्ठित बुद्धि राम, रमाके मनके हंस गोविन्दके लिये नमस्कार है, नमस्कार है ॥७॥

कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने।
वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः ॥८॥
(गो० पू० ता०)

वेणुनादविनोदाय गोपालायाहिमर्दिने।
कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे॥
वल्लवीवदनाम्भोजमालिने नृत्तशालिने।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥९॥
(गो० पू० ता०)

नमः पापप्रणाशाय गोवर्धनधराय च।
पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥१०॥
(गो० पू० ता०)

निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥११॥
(गो० पू० ता०)

प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर।
आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ॥१२॥
(गो० पू० ता०)

श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ॥१३॥
(गो० पू० ता०)

कंसके वंशको नाश करनेवाले, केशि और चाणूरको मारनेवाले, महादेवजीसे वन्दित पार्थके सारथिके लिये नमस्कार है ॥८॥

वेणुके नादमें विनोद माननेवाले, गोपाल, सर्पको नाथनेवाले, कालिन्दीके किनारेपर चलनेवाले, चञ्चल कुण्डल धारण करनेवाले, वल्लवी मुखवाले, कमलमाली, नृत्तशालीके लिये नमस्कार है. प्रणतपाल श्रीकृष्ण-के लिये नमस्कार है, नमस्कार है ॥९॥

पापके नाश करनेवाले, गोवर्धनधारी, पूतनाके जीवनका अन्त करने-वाले, तृणावर्तके प्राण हरण करनेवालेको नमस्कार है ॥१०॥

कलारहित, मोहरहित, शुद्ध, अशुद्धके वैरी, अद्वितीय, महान् श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है, नमस्कार है ॥११॥

हे परमानन्द ! प्रसन्न हूजिये, हे परमेश्वर ! प्रसन्न हूजिये, आधि-व्याधिरूप सर्पसे डसे हुएका मेरा हे प्रभो ! उद्धार कीजिये ॥१२॥

हे श्रीकृष्ण ! हे रुक्मिणीकान्त ! हे गोपीजनोंके मनको हरनेवाले ! हे जगद्गुरो ! संसारसागरमें डूबते हुए मुझको निकालिये ॥१३॥

केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन ।
गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥१४॥
(गो० पू० ता०)

एकमेवाद्वयं ब्रह्म मायया च चतुष्टयम् ।
रोहिणीतनयो विश्व अकाराक्षरसम्भवः ॥१॥

तैजसात्मकः प्रद्युम्न उकाराक्षरसम्भवः ।
प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धोऽसौ मकाराक्षरसम्भवः ॥२॥

अर्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितम् ।
कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृती रुक्मिणी ॥३॥

व्रजस्त्रीजनसम्भूतः श्रुतिभ्यो ज्ञानसंगतः ।
प्रणवत्वेन प्रकृतित्वं वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥४॥

तस्मादोंकारसम्भूतो गोपालो विश्वसंस्थितः ।
क्लीमोंकारस्यैकत्वं वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥५॥१५॥
(गो० उ० ता०)

ॐ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयतुरीयातीतोऽन्तर्यामी गोपाल
ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥१६॥
(गो० उ० ता०)
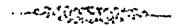
हे केशव ! हे क्लेशोंको हरनेवाले ! हे नारायण ! हे जनार्दन ! हे गोविन्द ! हे परमानन्द ! हे माधव ! मेरा उद्धार कीजिये ॥१४॥

एक ही अद्वय ब्रह्म मायासे चार प्रकारका हुआ है। रोहिणीका पुत्र विश्वरूप अकार अक्षरसे उत्पन्न हुआ है ॥१॥

तैजसरूप प्रद्युम्न उकारसे उत्पन्न हुआ है। प्राज्ञस्वरूप अनिरुद्ध है, वह मकार अक्षरसे उत्पन्न हुआ है ॥२॥

अर्धमात्रास्वरूप कृष्ण है, जिनमें विश्व स्थित है, कृष्णरूपिणी जगत्को उत्पन्न करनेवाली मूल प्रकृति रुक्मिणी हैं ॥३॥

व्रजकी वनिताएँ ज्ञानरूप श्रुतियोंसे उत्पन्न हुई हैं, प्रणवरूप होनेसे ब्रह्मवादी प्रकृतिपना कहते हैं ॥४॥

उसमेंसे ओंकाररूप गोपाल उत्पन्न हुआ विश्वमें स्थित है, क्लीं और ओंकारकी एकता ब्रह्मवादी कहते हैं ॥५॥१५॥

ॐ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत, अन्तर्यामी गोपाल, ॐ, तत्, सत्, भूः, भुवः, स्वः इनके लिये नमस्कार है, नमस्कार है ॥१६॥

विष्णुस्वरूपबोधकश्रुतयः

ॐ नमो नारायणाय शङ्खचक्रगदाधराय । तस्मात् ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रोपासको वैकुण्ठभवनं गमिष्यति ॥१॥

(आत्मबोध)

अथ यदिदं ब्रह्मपुरं पुण्डरीकं तस्मात्तडिदाभमात्रं दीपवत्प्रकाशम् । ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः । ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युतः ॥ सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्मो शोकमोहविनिर्मुक्तो विष्णुं ध्यायन्नसीदति ॥२॥

(आत्मबोध)

ॐ केशवाय नमः । ॐ नारायणाय नमः । ॐ माधवाय नमः । ॐ गोविन्दाय नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ मधुसूदनाय नमः । ॐ त्रिविक्रमाय नमः । ॐ वामनाय नमः । ॐ श्रीधराय नमः । ॐ हृषीकेशाय नमः । ॐ पद्मनाभाय नमः । ॐ दामोदराय नमः । ॐ संकर्षणाय नमः । ॐ वासुदेवाय नमः । ॐ प्रद्युम्नाय नमः । ॐ अनिरुद्धाय नमः । ॐ पुरुषोत्तमाय नमः । ॐ अधोक्षजाय नमः । ॐ नारसिंहाय नमः । ॐ अच्युताय नमः । ॐ जनार्दनाय नमः । ॐ उपेन्द्राय नमः । ॐ हरये नमः । ॐ श्रीकृष्णाय नमः ।

विष्णुस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

ॐ शंख, चक्र, गदाधारी नारायणके लिये नमस्कार है, इसलिये 'ॐ नारायणाय' इस मन्त्रका उपासक वैकुण्ठलोकको जाता है ॥१॥

अब जो यह ब्रह्मपुर कमलरूप है, उसमें बिजलीकी प्रभामात्र दीपके समान प्रकाश है, ब्राह्मणोंको प्यारे अथवा ब्राह्मण जिनको प्यारे हैं, ऐसे देवकीपुत्र, ब्रह्मण्य मधुसूदन, ब्रह्मण्य पुण्डरीकाक्ष अच्युत विष्णु हैं। सर्व भूतोंमें स्थित कारण पुरुष अकारण परं ब्रह्म ॐ एक नारायण विष्णुका जो ध्यान करता है, वह शोक-मोहसे छूट जाता है और कष्ट नहीं पाता ॥२॥

ॐ केशवके लिये नमस्कार है। ॐ नारायणके लिये नमस्कार है। ॐ माधवके लिये नमस्कार है। ॐ गोविन्दके लिये नमस्कार है। ॐ विष्णुके लिये नमस्कार है। ॐ मधुसूदनके लिये नमस्कार है। ॐ त्रिविक्रमके लिये नमस्कार है। ॐ वामनके लिये नमस्कार है। ॐ श्रीधरके लिये नमस्कार है। ॐ हृषीकेशके लिये नमस्कार है। ॐ पद्मनाभके लिये नमस्कार है। ॐ दामोदरके लिये नमस्कार है। ॐ संकर्षणके लिये नमस्कार है। ॐ वासुदेवके लिये नमस्कार है। ॐ प्रद्युम्नके लिये नमस्कार है। ॐ अनिरुद्धके लिये नमस्कार है। ॐ पुरुषोत्तमके लिये नमस्कार है। ॐ अधोक्षजके लिये नमस्कार है। ॐ नरसिंहके लिये नमस्कार है। ॐ अच्युतके लिये नमस्कार है। ॐ जनार्दनके लिये नमस्कार है। ॐ उपेन्द्रके लिये नमस्कार है। ॐ हरिके लिये नमस्कार है। ॐ श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है।

दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचोदयात् । दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् । तद्बहिः प्रणवसंपुटिताङ्कुशबीजयुक्तं वृत्तम् । ॐ क्रोंमोंमिति । तद्बहिः पुनर्वृत्तं तन्मध्ये द्वादशकुक्षिस्थानानि सान्तरालानि । तेषु कौस्तुभवनमालाश्रीवत्ससुदर्शनगरुडपद्मध्वजानन्तशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दकमन्त्राः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण । ॐ कौस्तुभाय नमः । ॐ वनमालायै नमः । ॐ श्रीवत्साय नमः । ॐ सुदर्शनाय नमः । ॐ गरुडाय नमः । ॐ पद्माय नमः । ॐ ध्वजाय नमः । ॐ अनन्ताय नमः । ॐ शार्ङ्गाय नमः । ॐ गदायै नमः । ॐ शङ्खाय नमः । ॐ नन्दकाय नमः । तदन्तरालेषु—ॐ विष्वक्सेनाय नमः । ॐ आतलकाय स्वाहा । ॐ वितलकाय स्वाहा । ॐ सुतलकाय स्वाहा । ॐ तलातलकाय स्वाहा । ॐ रसातलकाय स्वाहा । ॐ महातलकाय स्वाहा । ॐ भूर्लोकाय स्वाहा । ॐ भुवर्लोकाय स्वाहा । ॐ स्वर्लोकाय स्वाहा । ॐ महर्लोकाय स्वाहा । इति ॥३॥

(त्रिपाद् नारायण)

श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायण परं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते ॥४॥

(त्रिपाद् नारायण)

दाशरथ (दशरथ-पुत्र) को हम जानते हैं, सीतावल्लभका ध्यान करते हैं। वे राम हमको प्रेरणा करें। दामोदरको हम जानते हैं, वासुदेवका ध्यान करते हैं। वे कृष्ण हमको प्रेरणा करें। उसके पीछे प्रणवसहित अंकुश बीजयुक्त वृत्त है। ॐ क्रों ओम् इति। उसके पीछे पुनर्वृत्त, उसके मध्यमें अन्तरालसहित बारह कुक्षिस्थान हैं। उनमें कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, सुदर्शन, गरुड़, पद्म, ध्वजा, अनन्त, शार्ङ्ग, गदा, शंख, नन्दक, मंत्र है। प्रणवसे लेकर नमःपर्यन्त क्रमसे चतुर्थ्यन्त हैं। ॐ कौस्तुभके लिये नमस्कार है। ॐ श्रीवत्सके लिये नमस्कार है। ॐ सुदर्शनके लिये नमस्कार है। ॐ गरुड़के लिये नमस्कार है। ॐ पद्मके लिये नमस्कार है। ॐ ध्वजाके लिये नमस्कार है। ॐ अनन्तके लिये नमस्कार है। ॐ शार्ङ्गके लिये नमस्कार है। ॐ गदाके लिये नमस्कार है। ॐ शंखके लिये नमस्कार है। ॐ नन्दकके लिये नमस्कार है, उनके अन्तराल (बीचमें)—ॐ विष्वक्सेनके लिये नमस्कार है। ॐ आचक्रके लिये स्वाहा। ॐ विचक्रके लिये स्वाहा। ॐ सुचक्रके लिये स्वाहा। ॐ धीचक्रके लिये स्वाहा। ॐ संचक्रके लिये स्वाहा। ॐ ज्वाला चक्रके लिये स्वाहा। ॐ क्रुद्धवल्कके लिये स्वाहा। ॐ महाउल्कके लिये स्वाहा। ॐ वीर्यउल्कके लिये स्वाहा। ॐ द्युल्कके लिये स्वाहा। ॐ सहस्र उल्कके लिये स्वाहा। इति ॥३॥

श्रीमत् नारायण हैं, पर नारायण ज्योतिस्वरूप हैं, नारायण परं ब्रह्म हैं, हे नारायण ! आपको नमस्कार है ॥४॥

सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशम्भुवम् ।
विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं पदम् ॥
विश्वतः परमान्नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ।
विश्वमेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति ॥
पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ।
नारायणं महाज्ञेयं विश्वात्मानं परायणम् ॥
नारायणपरो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ॥
नारायणपरो ध्याता ध्यानं नारायणः परः ।
यच्चकिञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥४॥
(नारा० १३)

सहस्र शिरवाले, देव, विश्वके नेत्र, विश्वके शम्भु, विश्व, नारायण, अक्षर, देव, परम पद, विश्वसे पर, नित्य विश्वरूप नारायण हरिको नमस्कार है, यह विश्व ही पुरुष है, वह विश्वको पालन करता है। पति, विश्वके आत्मा, ईश्वर, शाश्वत, शिव, अच्युत, नारायण, महाज्ञेय, विश्वके आत्मा परम अयनको नमस्कार है, नारायण परम ज्योति हैं, नारायण परमात्मा हैं, नारायण परम ब्रह्म हैं, नारायण परम तत्त्व हैं, नारायण परम ध्याता हैं, नारायण परम ध्यान हैं। यह जो कुछ जगत् देखने-सुननेमें आता है, सबके बाहर-भीतर नारायण व्याप्त होकर स्थित हैं ॥५॥

शिवस्वरूपबोधकश्रुतयः

य एको जालवानीशत ईशनीभिः
सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
य एवैक उद्भवे संभवे च
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१॥
(श्वेता० ३।१)

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥२॥
(श्वेता० ३।२)

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३॥
(श्वेता० ३।३)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥४॥
(श्वेता० ३।४)

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥५॥
(श्वेता० ३।११)

शिवस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

जो एक संसारजालको अपनी शक्तियोंसे वशमें रखता है, सर्व लोकोंको अपनी शक्तियोंसे नियममें रखता है, जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयमें एक ही है, जो उसको जानते हैं, वे अमृत हो जाते हैं ॥१॥

रुद्र एक ही है, दूसरा नहीं है, जो अपनी शक्तियोंसे इन लोकोंको वशमें रखता है, विश्वको उत्पन्न करके भुवनोंका रक्षक प्रत्यक्रूपसे स्थित होता है और अन्तकालमें सबको अपनेमें लय कर लेता है ॥२॥

विश्वभरमें नेत्रवाला, विश्वभरमें मुखवाला, विश्वभरमें भुजा-वाला, विश्वभरमें पदवाला एक ही देव स्वर्ग और पृथिवीको भुजारूपी पंखोंसे रचता है ॥३॥

जो रुद्र देवताओंका उत्पन्न करनेवाला और ऐश्वर्य देनेवाला है, विश्वका अधिपति है, महर्षि है, जिसने पूर्वमें हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया, वह हमको शुभ बुद्धिसे युक्त करे ॥४॥

वह भगवान् सबके मुख, शिर और ग्रीवा हैं, सर्व प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें स्थित हैं, सर्वव्यापी हैं, इसलिये वे सर्वगत शिव हैं ॥५॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥६॥
(श्वेता० ४ । १४)

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥७॥
(श्वेता० ५ । १४)

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः ।
प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा कृता ॥८॥
(रुद्रहृदयोपनिषद्)

धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः ।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ ९ ॥
(रु० हृ०)

कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ॥१०॥
(रु० हृ०)

रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥११॥

रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ॥१२॥

रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥१३॥

सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, कलिलके मध्यमें सृष्टिको उत्पन्न करनेवाले, अनेक रूप, विश्वके एक घेरनेवाले शिवको जानकर अधिकारी अत्यन्त शान्तिको पाता है ॥६॥

भावग्राही, अमन, ईडयनामक, भाव-अभाव करनेवाले, शिव, कलारूप सर्गको करनेवाले देवको जो जानते हैं, वे शरीरको छोड़ देते हैं—फिर शरीर धारण नहीं करते ॥७॥

विष्णु कार्य हैं, ब्रह्मा क्रिया है, महेश्वर कारण है, प्रयोजनके अर्थ रुद्रने एक मूर्ति तीन प्रकारकी कर ली है ॥८॥

धर्म रुद्र है । जगत् विष्णु है । सर्वज्ञान पितामह है । श्रीरुद्र रुद्र रुद्र उसको जो विचक्षण पुरुष कहे ॥ ९ ॥

सर्व देवके कीर्तनसे अधिकारी सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । रुद्र नर है । उमा नारी है । रुद्रके लिये नमस्कार है । उमाके लिये नमस्कार है ॥ १० ॥

रुद्र ब्रह्मा है, उमा वाणी है, रुद्रके लिये नमस्कार है, उमाके लिये नमस्कार है । रुद्र विष्णु है, उमा लक्ष्मी है, रुद्रके लिये नमस्कार है, उमाके लिये नमस्कार है ॥११॥

रुद्र सूर्य है, उमा छाया है, रुद्रके प्रति नमस्कार है, उमाके प्रति नमस्कार है । रुद्र सोम है, उमा तारा है, रुद्रके लिये नमस्कार है, उमाके लिये नमस्कार है ॥१२॥

रुद्र दिन है, उमा रात्रि है, रुद्रके लिये नमस्कार है, उमाके लिये नमस्कार है । रुद्र यज्ञ है, उमा वेदी है, रुद्रके प्रति नमस्कार है, उमाके प्रति नमस्कार है ॥१३॥

रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ १४ ॥

रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो गन्ध उमा पुष्पं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

रुद्रोऽर्थ अक्षरः सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥

सर्वदेवात्मकं रुद्रं नमस्कुर्यात्पृथक् पृथक् ।
एभिर्मन्त्रपदैरेव नमस्यामीश पार्वतीम् ॥ १७ ॥

यत्र यत्र भवेत्सार्धमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
ब्रह्महा जलमध्ये तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

(रु० हृ०)

छित्त्वाऽविद्यामहाग्रन्थिं शिवं गच्छेत्सनातनम् ।
तदेतदमृतं सत्यं तद्बोद्धव्यं मुमुक्षुभिः ॥ १९ ॥

(रु० हृ०)

अन्तरात्मा भवेद्ब्रह्मा परमात्मा महेश्वरः ।
सर्वेषामेव भूतानां विष्णुरात्मा सनातनः ॥ २० ॥

(रु० हृ०)

रुद्र वह्नि है, उमा स्वाहा है, रुद्रके लिये नमस्कार है, उमाके लिये नमस्कार है। रुद्र वेद है, उमा स्मृति है, रुद्रके प्रति नमस्कार है, उमाके प्रति नमस्कार है ॥१४॥

रुद्र वृक्ष है, उमा बेल है, रुद्रके प्रति नमस्कार है, उमाके प्रति नमस्कार है। रुद्र गन्ध है, उमा पुष्प है, रुद्रके प्रति नमस्कार है, उमाके प्रति नमस्कार है ॥१५॥

रुद्र अर्थ है, उमा अक्षर है, रुद्रके प्रति नमस्कार है, उमाके प्रति नमस्कार है। रुद्र लिंग है, उमा पीठ है, रुद्रके प्रति नमस्कार है, उमाके प्रति नमस्कार है ॥१६॥

सर्व देवात्मक रुद्रको पृथक् पृथक् नमस्कार करना चाहिये। मैं उपर्युक्त मन्त्रोंद्वारा ईश्वर रुद्र और उमा देवीको नमस्कार करता हूँ ॥१७॥

जहाँ कहीं रहे, साथ ही इस मन्त्रका उच्चारण करता रहे। जलमें प्रविष्ट होकर ब्रह्महत्यारा भी इस मन्त्रका जप करे तो वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥१८॥

अविद्यारूप महाग्रन्थिको छेदन करके सनातन शिवको प्राप्त होवे, वह यह अमृत है। सत्य है। वही मुमुक्षुओंको जानना चाहिये ॥ १९॥

ब्रह्मा अन्तरात्मा है। महेश्वर परमात्मा है। विष्णु सर्व भूतोंका ही सनातन आत्मा है ॥ २० ॥

भस्मव्यापाण्डुराङ्गः शशिशकलधरो ज्ञानमुद्राक्षमाला-
वीणापुस्तैर्विराजत्करकमलधरो योगपट्टाभिरामः ।
व्याख्यापीठे निषण्णो मुनिवरनिकरैः सेव्यमानः प्रसन्नः
सव्यालः कृत्तिवासाः सततमवतु नो दक्षिणामूर्तिरीशः ॥२१॥
(दक्षिणामूर्ति)

तत्त्वविचारपाशेन बद्धं द्वैतभयातुरम् ।
उज्जीवयन्निजानन्दे स्वस्वरूपेण संस्थितः ॥२२॥
शेमुषी दक्षिणा प्रोक्ता सा यस्याभीक्षणे मुखम् ।
दक्षिणाभिमुखः प्रोक्तः शिवोऽसौ ब्रह्मवादिभिः ॥२३॥
सर्गादिकाले भगवान्विरञ्चि
रुपास्यैनं सर्गसामर्थ्यमाप्य ।
तुतोष चित्ते वाञ्छितार्थांश्च लब्ध्वा
धन्यः सोपास्योपासको भवति धाता ॥२४॥
(दक्षिणामूर्ति)

यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्र नाग्निर्दहति यत्र न मृत्युः प्रविशति यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः ॥२५॥
(बृहज्जाबाल० ८।१)

भस्म लगाये हुए, श्वेत अंगवाले, अर्द्धचन्द्र धारण करनेवाले, ज्ञानमुद्रारूप अक्षमाला पहिने हुए, वीणारूप पुतलियोंसे शोभायमान, हाथमें कमल लिये हुए, योगपट्टपर आनन्द करनेवाले, मुनिवरोंसे सेवित, व्याख्यापीठपर बैठे हुए, प्रसन्न, व्यालसहित, चर्मवस्त्रवाले दक्षिणामूर्ति ईश्वर सर्वदा हमारी रक्षा करें ॥ २१ ॥

तत्त्वके अविचाररूप पाशमें बँधे हुए, द्वैतके भयसे आतुर लोगोंको जो अपने आनन्दमें उज्जीवित कर लेते हैं, जो स्वस्वरूपसे स्थित हैं, जिनका मुख देखनेसे बुद्धि दक्षिणा कहलाती है, उन शिवको ब्रह्मवादी दक्षिणाभिमुख कहते हैं। सृष्टिके आदिकालमें भगवान् विरञ्चि इनकी उपासना करनेसे सामर्थ्य प्राप्त कर और वाञ्छित अर्थ पाकर चित्तमें संतुष्ट होते हैं, इन उपास्यका उपासक धन्य है क्योंकि वह भी धाता—सबका धारण करनेवाला हो जाता है ॥ २२। २३। २४ ॥

जहाँ सूर्य नहीं तपता, जहाँ वायु नहीं चलता, जहाँ चन्द्रमा नहीं भासता, जहाँ नक्षत्र नहीं भासते, जहाँ अग्नि नहीं जलता, जहाँ मृत्यु नहीं घुसता, जहाँ दुःख नहीं प्रवेश करते, जो सदानन्द, परमानन्द, शान्त, शाश्वत, सदाशिव, ब्रह्मादिसे वन्दित, योगियोंके ध्येय, परं पद हैं, जहाँ जाकर योगी नहीं लौटते हैं ॥ २५ ॥

सूर्यस्वरूपबोधकश्रुतयः

ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः। ॐ खेचराय नमः। ॐ महासेनाय नमः। ॐ तमसे नमः। ॐ रजसे नमः। ॐ सत्त्वाय नमः। ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। हंसो भगवा-ञ्छुचिरूपः। विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरुषः प्रजानामुद-यत्येष सूर्यः। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षितेजसे-ऽहोवाहिनि वाहिनि स्वाहेति ॥१॥

(अक्ष्युपनिषद्)

पञ्चाक्षरान्तेन बीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम्। सप्ता-श्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरदहस्तं काल-चक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः ॥२॥

(सूर्योपनिषद्)

ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। सूर्य आत्मा जगतस्तस्थु-षश्च। सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥३॥

(सूर्योपनिषद्)

सूर्यस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

ॐ भगवान्‌को नमस्कार है, नेत्ररूप तेजवाले श्रीसूर्यको नमस्कार है, ॐ आकाशचारीके लिये नमस्कार है। ॐ महासेनावालेके लिये नमस्कार है, ॐ तमोगुणके लिये नमस्कार है। ॐ रजोगुणके लिये नमस्कार है। ॐ सतोगुणके लिये नमस्कार है। ॐ असत्‌से मुझे सत् प्राप्त कराओ। अँधेरेसे मुझे ज्योति प्राप्त कराओ। मृत्युसे मुझको अमृत प्राप्त कराओ। हंस भगवान् शुचिरूप हैं। विश्वरूप घृणि-सूर्य, अग्नि, प्रकाशमय, ज्योतिरूप तपते हुएको नमस्कार है। हजार किरणोंवाले, सैकड़ों प्रकारसे वर्तनेवाले प्रजाओंके पुरुष यह सूर्य उदय होते हैं। ॐ नमस्कार है, भगवान् श्रीसूर्य आदित्य, नेत्ररूप तेजवाले दिनके चलानेवाले चलानेवाले स्वाहा ॥१॥

छः स्वरोंसे आरूढ बीजसे छः अंगवाले कमलपर स्थित, सात घोड़ों-के रथवाले, सुवर्ण-तेजोमय वर्णवाले, चतुर्भुज, अभय वर देनेवाले, दो कमल हाथमें लिये हुए कालचक्रके चलनेवाले श्रीसूर्यनारायणको जो इस प्रकार जानता है, वह ही ब्राह्मण है ॥२॥

ॐ भूः, भुवः, स्वः। ॐ उस सविता, पूज्य, भर्गदेवका मैं ध्यान करता हूँ, जो हमारी बुद्धिकी प्रेरणा करे। सूर्य जगत्‌का और स्थावरका आत्मा है, सूर्यसे ये सब भूत निश्चय उत्पन्न होते हैं ॥३॥

नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि। भ्राजिष्णवे विश्व-हेतवे नमः।

सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥४॥

ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म घृणिरिति द्वे अक्षरे सूर्य इत्य-क्षरद्वयम्। आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि। एतस्यैव सूर्याष्टाक्षरो मनुः। यः सदाहरहर्जपति स वै ब्राह्मणो भवति। सूर्याभि-मुखो जप्त्वा महाव्याधिभयात् प्रमुच्यते ॥५॥

(सूर्योपनिषद्)

नमस्कार है मित्र भानुके लिये। मृत्युसे हमारी रक्षा कीजिये। शोभायमान, विश्वके हेतुके लिये नमस्कार है। सूर्यसे भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्यसे पालन किये जाते हैं, सूर्यमें लय होते हैं, जो सूर्य है, वही मैं हूँ ॥४॥

ॐ यह अक्षर ब्रह्म है। घृणि ये दो अक्षर हैं। सूर्य ये दो अक्षर हैं। आदित्य ये तीन अक्षर हैं। इस वारह अक्षरके सूर्यको जो सदा प्रतिदिन जपता है वह ब्राह्मण हो जाता है। सूर्यके सम्मुख जपनेसे महाव्याधियोंसे छूट जाता है ॥५॥

गणपतिस्वरूपबोधकश्रुतयः

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्त्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्। ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि। अव त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्। अव धातारम्। अवानूचानमव शिष्यम्। अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्। अव चोत्तरात्तात्। अव दाक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात्। त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि। सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्पदानि। त्वं गुणत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् ॥१॥

गणपतिस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

ॐ गणपतिके लिये नमस्कार है। आप ही प्रत्यक्ष तत्त्व हैं। आप ही केवल कर्ता हैं। आप ही केवल धर्ता हैं। आप ही केवल हर्ता हैं। आप ही निश्चयपूर्वक यह सब ब्रह्मस्वरूप हैं। आप साक्षात् नित्य आत्मा हैं। मैं शास्त्रानुसार सच कहता हूँ। लोकानुसार सच कहता हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। वक्ताकी रक्षा कीजिये। श्रोताकी रक्षा कीजिये। दाताकी रक्षा कीजिये। धाताकी रक्षा कीजिये। वेदपाठीकी रक्षा कीजिये। शिष्यकी रक्षा कीजिये। पीछेसे रक्षा कीजिये। आगेसे रक्षा कीजिये। उत्तरसे रक्षा कीजिये। दक्षिणसे रक्षा कीजिये। ऊपरसे रक्षा कीजिये। नीचेसे रक्षा कीजिये। सब तरफसे मेरी रक्षा कीजिये। सब भाँतिसे मेरी रक्षा कीजिये। आप वाणीमय चिन्मय हैं। आप आनन्दमय ब्रह्ममय हैं। आप सच्चिदानन्दरूप अद्वितीय हैं। आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। आप ज्ञानमय विज्ञानमय हैं। यह सब जगत् आपसे उत्पन्न होता है। यह सब जगत् आपमें स्थित है। यह सब जगत् आपमें लय हो जाता है। यह सब जगत् आपमें प्राप्त होता है। आप भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश हैं। आप चार वाक्यपद हैं। आप तीनों गुणोंसे अतीत हैं। आप तीनों कालोंसे अतीत हैं। आप तीनों देहोंसे अतीत हैं। आप मूलाधारमें स्थित नित्य हैं। आप तीन शक्तिस्वरूप हैं। आपको नित्य योगी ध्यान करते हैं। आप ब्रह्मा हैं। आप विष्णु हैं। आप रुद्र हैं। आप अग्नि हैं। आप इन्द्र हैं। आप वायु हैं। आप सूर्य हैं। आप चन्द्रमा हैं। आप ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः और ओम् हैं ॥१॥

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥२॥

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम् ।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम् ॥३॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम् ।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम् ॥४॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम् ।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम् ॥५॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः ॥६॥

(गणपत्युपनिषद्)

एक दाँतवालेको मैं जानता हूँ, वक्र तुण्डवालेका मैं ध्यान करता हूँ। वे दन्ती मुझे प्रेरणा करें ॥२॥

एक दाँतवाले, चार हाथवाले, पाश-अङ्कुश धारण करनेवाले, अभयरूप, वर देनेवाले हाथोंसे शोभायमान, मूषक ध्वजावाले, रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्णवाले, रक्त वस्त्रवाले, रक्त गन्धसे अनुलिप्त अंगवाले, रक्तपुष्पोंसे पूजित, भक्तोंपर दया करनेवाले, देव, जगत्‌के कारण, अच्युत, निर्विकार, सृष्टिके आदिमें आविर्भूत होनेवाले, प्रकृति और पुरुषसे पर देवका जो नित्य ध्यान करता है वह योगी है, वह योगियोंमें श्रेष्ठ है ॥३–६॥

देविस्वरूपबोधकश्रुतयः

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥ १ ॥
नमामि त्वामहं देवीं महाभयविनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ २ ॥

यस्या स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यतेऽज्ञेया । यस्या अन्तो न विद्यते तस्मादुच्यतेऽनन्ता । यस्या ग्रहणं नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽलक्ष्या । यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽजा । एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका । एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका । अत एवोच्यतेऽज्ञेयाऽनन्ताऽलक्ष्याऽजैका नैकेति ॥ ३ ॥

मंत्राणां मात्रिका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी ॥ ४ ॥
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ।
(दुर्गात्संत्रायते यस्माद्देवी दुर्गेति कथ्यते ॥ ५ ॥
प्रपद्ये शरणं देवीं दुंदुर्गे दुरितं हर ।)
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥ ६ ॥

(देव्युपनिषद्)

देविस्वरूपबोधक श्रुतियाँ

हृदयकमलमें स्थित, प्रातःसूर्यके समान प्रभावाली, पाश-अंकुश लिये हुए, वरद और अभय हाथवाली, तीन नेत्रवाली, रक्त वस्त्रवाली, भक्तोंकी कामधेनुको मैं भजता हूँ ॥१॥ आप महाभयनाशिनी, महादुर्गोंको शान्त करनेवाली, महान् दयारूपिणी देवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

जिसका स्वरूप ब्रह्मा आदि नहीं जानते, इसलिये अज्ञेया कहलाती है। जिसका अन्त नहीं है, इसलिये अनन्ता कहलाती है। जिसका ग्रहण नहीं हो सकता, इसलिये अलक्ष्या कहलाती है। जिसका जन्म नहीं है, इसलिये अजा कहलाती है, एक ही सर्वत्र वर्तती है, इसलिये एका कहलाती है। एक ही विश्वरूपिणी है, इसलिये नैका कहलाती है, इसीलिये अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका, नैका कहलाती है ॥३॥

मन्त्रोंमें माता देवी है। शब्दोंमें ज्ञानरूपिणी है, ज्ञानोंमें चिन्मयातीत है, शून्योंमें शून्यकी साक्षिणी है ॥४॥ जिससे अधिक कोई नहीं है, इसलिये यह दुर्गा कहलाती है, दुर्गोंसे रक्षा करती है, इसलिये दुर्गा कहलाती है ॥५॥ देवीकी मैं शरण हूँ, हे दुं दुर्गे, पापोंको हर ले। उस दुर्गम, दुराचारोंको नाश करनेवाली, संसार-समुद्रसे तारनेवाली दुर्गादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ, क्योंकि मैं संसारसे भयभीत हूँ ॥६॥

या वेदान्तार्थतत्त्वैकस्वरूपा परमार्थतः ।
नामरूपात्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती ॥ ७ ॥
या साङ्गोपाङ्गवेदेषु चतुर्ष्वेकैव गीयते ।
अद्वैता ब्रह्मणः शक्तिः सा मां पातु सरस्वती ॥ ८ ॥
या वर्णपदवाक्यार्थस्वरूपेणैव वर्तते ।
अनाद्यनिधनानन्ता सा मां पातु सरस्वती ॥ ९ ॥
अध्यात्ममधिदैवं च देवानां सम्यगीश्वरी ।
प्रत्यगास्ते वदन्ती या सा मां पातु सरस्वती ॥१०॥
अन्तर्याम्यात्मना विश्वं त्रैलोक्यं या नियच्छति ।
रुद्रादित्यादिरूपस्था सा मां पातु सरस्वती ॥११॥
या प्रत्यग्दृष्टिभिर्जीवैर्व्यज्यमानानुभूयते ।
व्यापिनी ज्ञप्तिरूपैका सा मां पातु सरस्वती ॥१२॥
नामजात्यादिभिर्भेदैरष्टधा या विकल्पिता ।
निर्विकल्पात्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती ॥१३॥
व्यक्ताव्यक्तगिरः सर्वे वेदाद्या व्याहरन्ति याम् ।
सर्वकामदुघा धेनुः सा मां पातु सरस्वती ॥१४॥
यां विदित्वाखिलं बन्ध निर्मथ्याखिलवर्त्मना ।
योगी याति परं स्थानं सा मां पातु सरस्वती ॥१५॥
नामरूपात्मकं सर्वं यस्यामावेश्य तां पुनः ।
ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मां पातु सरस्वती ॥१६॥

जो परमार्थसे वेदान्तका अर्थ एक-तत्त्वस्वरूपा है; नामरूप स्वरूप-से व्यक्त है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥७॥

जो अङ्ग-उपाङ्गसहित चारों वेदोंमें गायी जाती है, अद्वैता, ब्रह्मकी शक्ति वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥८॥

जो वर्ण, पद, वाक्यके अर्थस्वरूपसे वर्तती है, अनादि, अनिधन, अनन्त वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥९॥

अध्यात्म, अधिदैवरूपसे जो देवताओंकी सम्यक् ईश्वरी है, प्रत्यक्-अस्तिरूपसे बोलनेवाली है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥१०॥

जो अन्तर्यामीरूपसे विश्वरूप तीनों लोकोंको धारण करती है, रुद्र-आदित्यरूपसे जो स्थित है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥११॥

जो प्रत्यक् दृष्टिसे जीवोंद्वारा प्रकट हुई अनुभवमें आती है और व्याप्तिरूपसे व्यापिनी एक है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥१२॥

जो नाम, जाति आदि भेदोंसे आठ प्रकारकी कल्पी गयी है, निर्विकल्परूपसे अव्यक्त है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥१३॥

व्यक्त, अव्यक्त वाणीरूप जिसको वेदादि कहते हैं, सर्व कामनाओंकी दोहनेवाली धेनु वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥१४॥

जिसको जानकर सम्पूर्ण बन्धनको सर्व मार्गोंसे तोड़कर योगी परम स्थानको जाता है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥१५॥

नाम-रूपात्मक सर्वको जिसमें लय करके फिर उसका ध्यान करते हैं, वह ब्रह्मरूपा एक सरस्वती मेरी रक्षा करे ॥१६॥

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम ।
मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥१७॥
नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनि ।
त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानं च देहि मे ॥१८॥
अक्षसूत्राङ्कुशधरा पाशपुस्तकधारिणी ।
मुक्ताहारसमायुक्ता वाचि तिष्ठतु मे सदा ॥१९॥
कम्बुकण्ठी सुताम्रोष्ठी सर्वाभरणभूषिता ।
महासरस्वती देवी जिह्वाग्रे संनिविश्यताम् ॥२०॥
या श्रद्धा धारणा मेधा वाग्देवी विधिवल्लभा ।
भक्तजिह्वाग्रसदना शमादिगुणदायिनी ॥२१॥
नमामि यामिनीनाथलेखालंकृतकुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ॥२२॥
यः कवित्वं निरातङ्कं भुक्तिमुक्ती च वाञ्छति ।
सोऽभ्यर्च्यैनां दशश्लोक्या नित्यं स्तौति सरस्वतीम्॥२३॥
तस्यैवं स्तुवतो नित्यं समभ्यर्च्य सरस्वतीम् ।
भक्तिश्रद्धाभियुक्तस्य षण्मासात् प्रत्ययो भवेत् ॥२४॥
ततः प्रवर्तते वाणी स्वेच्छया ललिताक्षरा ।
गद्यपद्यात्मकैः शब्दैरप्रमेयैर्विवक्षितैः ॥२५॥
अश्रुतो बुध्यते ग्रन्थः प्रायः सारस्वतः कविः ।
इत्येवं निश्चयं विप्राः सा होवाच सरस्वती ॥२६॥

(सरस्वतीरहस्योपनिषद्)

चतुर्मुखके मुखकमलरूप वनकी हंसवधू, सर्वशुक्ला सरस्वती मेरे मनमें नित्य रमण करे ॥१७॥

काश्मीरपुरकी वासिनी शारदा देवी! नमस्कार है, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, . मुझको नित्य विद्यादान दीजिये ॥१८॥

अक्ष, सूत्र, अंकुश धारण करनेवाली, पाश-पुस्तक-धारिणी, मोतियोंके हारसे युक्त सदा मेरी वाणीमें विराजिये ॥१६॥

शङ्खसम कण्ठवाली, ताँबेके समान ओष्ठवाली, सर्व भूषणोंसे भूपित महा सरस्वती देवी मेरी जिह्वाके अग्र भागमें निवास कीजिये ॥२०॥

श्रद्धा, धारणा, मेधा, वाग्देवी, ब्रह्माकी वल्लभा, भक्तोंके जिह्वाग्रमें घरवाली, शमादि गुणोंको देनेवाली ॥२१॥

चन्द्ररेखासे अलंकृत केशवाली, भवानी, भवसंतापको मेटनेवाली अमृतनदीको नमस्कार है ॥२२॥

जो कवि होना, निर्भय होना, भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, वह उपर्युक्त दश श्लोकोंसे नित्य सरस्वतीका अर्चन करके ॥२३॥

उस सरस्वतीका नित्य पूजन और स्तुति करता है, इस भक्ति और श्रद्धासे युक्तको छः महीनेमें ज्ञान हो जाता है ॥२४॥

फिर स्वेच्छासे ललित अक्षरवाली गद्य-पद्य-स्वरूप शब्दोंसे और अप्रमेय कथनोंसे वाणी प्रवर्तित होती है ॥२५॥

प्रायः सरस्वतीका कवि नहीं सुने हुए ग्रन्थको जान जाता है। हे ब्राह्मणो! यह बात निश्चय है, यह सरस्वतीने कहा है ॥२६॥
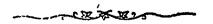
सच्चिदानन्दबोधकश्रुतयः

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये ।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥१॥

(निरालम्बोपनिषद्)

देवादिदेव सर्वज्ञ सच्चिदानन्दलक्षणः ।
उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे ॥२॥

(शुकरहस्य)

नित्यानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति
विश्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥३॥

(शुकरहस्य)

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यादतीतं
शुद्धं बुद्धं मुक्तमप्यव्ययं च ।
सत्यं ज्ञानं सच्चिदानन्दरूपं
ध्यायेदेवं तन्महोभ्राजमानम् ॥४॥

(शुकरहस्य)

सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेत् ॥५॥

(वज्रसूचिका)

सच्चिदानन्दबोधक श्रुतियाँ

ॐ सच्चिदानन्दमूर्ति, प्रपञ्चरहित, शान्त, आलम्बरहित, तेजरूप, शिवरूप गुरुके लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

देव, आदिदेव, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्दरूप, उमारमण, भूतेश, कल्याणनिधान प्रसन्न हूजिये ॥ २ ॥

नित्य आनन्दरूप, परम सुखदायक, केवल, ज्ञानमूर्ति, विश्वसे अतीत, आकाश-सम, 'तत्त्वमसि' आदिके लक्ष्य, एक, नित्य, निर्मल, अचल, सर्वबुद्धियोंके साक्षीभूत, संसारसे अतीत, तीनों गुणोंसे रहित, इन सद्गुरुको नमस्कार है ॥ ३ ॥

ज्ञानरूप, ज्ञेयरूप, ज्ञानगम्यसे अतीत, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अव्यय, सत्य, ज्ञान, सच्चिदानन्दरूप उन महा शोभायमान देवका ध्यान करे ॥४॥

सच्चिदानन्द, आत्मा, अद्वितीय ब्रह्मकी भावना करे ॥ ५ ॥

चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥६॥

(तेजोविन्दु)

सर्वं सच्चिन्मयं विद्धि सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ।
सच्चिदानन्दमद्वैतं सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥७॥

(तेजोविन्दु)

सच्चिदानन्दमात्रं हि सच्चिदानन्दमन्यकम् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं सच्चिदानन्दमेव खम् ॥८॥

(तेजोविन्दु)

ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत् त्रयम् ।
आनन्दं परमानन्दमन्यत्किंचिन्न किञ्चन ॥९॥

सच्चिदानन्दरूपोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
सत्यासत्यं जगन्नास्ति संकल्पकलनादिकम् ॥१०॥

(तेजोविन्दु)

स्वप्रकाशचिदानन्दं स हंस इति गीयते ।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा कुम्भकेव स्थितः सुधी ॥११॥

(ब्रह्मविद्या)

आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्म्यहम् ।
आत्मचैतन्यरूपोऽहमहमानन्दचिद्घनः ॥१२॥

(ब्रह्मविद्या)

चिद्रूपमात्र ब्रह्म ही सच्चिदानन्द अद्वय है, आनन्दघन मैं ही हूँ, केवल ब्रह्म मैं हूँ ॥ ६ ॥

सब सच्चिन्मय जान, सब सच्चिन्मय व्यापक है। सच्चिदानन्द अद्वैत है, सच्चिदानन्द अद्वय है ॥ ७ ॥

सच्चिदानन्दमात्र ही है। सच्चिदानन्द ही अन्यरूप है। सच्चिदानन्दरूप मैं हूँ, सच्चिदानन्द ही आकाश है ॥ ८ ॥

ब्रह्म ही सर्व चिन्मात्र है, ब्रह्ममात्र ही तीनों जगत् हैं, आनन्द-परमानन्दके सिवा अन्य कुछ नहीं है ॥ ९ ॥

मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ, यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, सत्य-असत्य जगत् नहीं है। संकल्प कलनादि नही है ॥१०॥

रेचक, पूरक छोड़कर कुम्भकरूपसे स्थित वह विद्वान् स्वप्रकाश चिदानन्द हंस कहलाता है ॥ ११ ॥

मैं आदि, मध्य और अन्तसे हीन हूँ, आकाशके समान हूँ, मैं आत्मा चैतन्यरूप हूँ, मैं आनन्द चेतनघन हूँ ॥१२॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः ।
सत्त्वस्वरूपसन्मात्रसिद्धसर्वात्मकोस्म्यहम् ॥१३॥

(ब्रह्मविद्या)

ज्ञातं येन निजं रूपं कैवल्यं परमं पदम् ।
निष्कलं निर्मलं साक्षात्सच्चिदानन्दरूपकम् ॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारस्फूर्तिज्ञानविवर्जितम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमथ योगं ब्रवीमि ते ॥१४॥

(योगतत्त्व)

चिद्रूपत्वान्न मे जाड्यं सत्यत्वान्नानृतं मम ।
आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत् ॥१५॥

(आत्मबोध)

सर्वगं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते ।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत् ॥१६॥

प्रज्ञानमेव तद्ब्रह्म सत्यप्रज्ञानलक्षणम् ।
एवं ब्रह्मपरिज्ञानादेव मर्त्योऽमृतो भवेत् ॥१७॥

मैं सच्चिदानन्दमात्र हूँ, स्वप्रकाश चिद्घन हूँ, सत्त्वस्वरूप सत्-मात्र, सिद्ध सबका आत्मा हूँ ॥१३॥

कलारहित, निर्मल, साक्षात् सच्चिदानन्दरूप, उत्पत्ति, स्थिति, संहार और स्फूर्तिज्ञानसे रहित कैवल्य-परमपद अपना रूप जिससे जाननेमें आता है, उसको ज्ञान कहते हैं, अब योग कहता हूँ ॥१४॥

चित्‌रूप होनेसे मुझमें जड़ता नहीं है, सत्यत्व होनेसे मुझमें असत्य नहीं है, आनन्दरूप होनेसे मुझमें दुःख नहीं है। अज्ञानसे सत्यके समान भासता है ॥१५॥

सर्वगत सच्चिदानन्दको ज्ञाननेत्रवाला देखता है। जैसे अन्धा प्रकाशमान सूर्यको नहीं देखता, इसी प्रकार अज्ञाननेत्रवाला सच्चिदानन्दको नहीं देखता ॥१६॥

वह ब्रह्म प्रज्ञान ही है, सत्य प्रज्ञानरूप है, इस प्रकार ब्रह्मके ज्ञानसे ही मनुष्य अमृत हो जाता है ॥१७॥
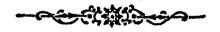
सर्वात्मबोधकश्रुतयः

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ १ ॥
(ईश० ६)

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ २ ॥
(ईश० ७)

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥
(ईश० ३)

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽ-
र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ४ ॥
(ईश० ८)

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ ५ ॥
(कठ० २।२०)

सर्वात्मबोधक श्रुतियाँ

जो सर्व प्राणियोंको आत्मामें ही देखता है और सर्व प्राणियोंमें आत्माको देखता है, तब वह किसीकी निन्दा नहीं करता ॥१॥

जिस कालमें जाननेसे सब प्राणी आत्मा ही हो जाते हैं, वहाँ एकत्व देखनेसे मोह क्या और शोक क्या ? यानी मोह, शोक नहीं होता ॥२॥

अप्रकाशरूप जो अँधेरेरूप तमसे ढके हुए लोक हैं, आत्माको हनन करनेवाले लोग उन लोकोंमें जाते हैं ॥३॥

वह सर्वत्र गया हुआ है, शुक्र है, कायारहित है, व्रण—घाव-रहित है, नाड़ीरहित है, पवित्र है, पापरहित है, सर्वज्ञ है, मनका प्रेरक है, सर्वत्र विद्यमान है, स्वयंभू है, पदार्थोंको यथायोग्यरूपसे सनातनी वर्षोंसे धारण करता है ॥४॥

सूक्ष्मोंसे भी सूक्ष्म, महानोंसे भी महान् आत्मा इस जीवकी बुद्धि-रूप गुहामें स्थित है, उस आत्माकी महिमाको निष्काम वीतशोक पुरुष मन आदिके निर्मल होनेसे देखता है ॥५॥

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६ ॥
(कठ० १ । २ । २२)

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम् ॥ ७ ॥
(कठ० १ । २ । २३)

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ ८ ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ९ ॥
(कठ० १ । ३ । १०, ११)

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १० ॥
(कठ० १ । ३ । १२)

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजिगुप्सते ॥ ११ ॥
(कठ० २ । ४ । १२)

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान्पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १२ ॥
(कठ० २ । ४ । १४)

शरीरोंमें शरीरोंसे रहित, अनित्योंमें नित्य महान् विभु आत्माको जानकर धीर पुरुष शोच नहीं करता ॥६॥

यह आत्मा प्रवचनसे प्राप्त नहीं होता, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे प्राप्त होता है, यह मुमुक्षु जिस आत्माको प्रत्यक्‌रूपसे भजता है, उसको यह आत्मा अपने आनन्दात्मक स्वरूपको प्रकाश करता है ॥७॥

इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ है, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे महत् आत्मा यानी समष्टि-बुद्धि श्रेष्ठ है, समष्टि-बुद्धिसे अव्यक्त माया श्रेष्ठ है, अव्यक्तसे श्रेष्ठ पुरुष आत्मा है, पुरुषसे श्रेष्ठ कुछ नहीं है, वह सबकी अवधि है और परा गति है ॥८॥६॥

यह सब भूतोंमें गूढ आत्मा प्रकाशित नहीं होता, मुख्य सूक्ष्म बुद्धिसे सूक्ष्मदर्शियोंके देखनेमें आता है ॥१०॥

अंगुष्ठमात्र पुरुष भूत, भविष्य, वर्तमानका ईश्वर शरीरके मध्यमें स्थित है। उसको जानकर फिर आत्माकी रक्षा करनेकी इच्छा नहीं करता ॥११॥

जैसे पर्वतके शिखरपर बरसा हुआ जल पर्वतोंमें दौड़ता है, इसी प्रकार शरीरादि धर्मोंको पृथक् जानता हुआ आत्मा उन्हींको प्राप्त होता है ॥१२॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१३॥
(कठ० २ । ४ । १५)

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।१४।
(कठ० २ । ५ । ९)

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः१५
(कठ० २ । ५ । ११)

आत्मन एष प्राणो जायते । यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्ने-
तदाततं मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ॥ १६ ॥
(प्रश्न० ३ । ३)

स यथा सोम्य वयांसि वासो वृक्षं संप्रतिष्ठन्ते ।
एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥१७॥
(प्रश्न० ४ । ७)

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा
कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परे आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥१८॥
(प्रश्न० ४ । ९)

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा ॥१९॥
(प्रश्न० ६ । ६)

जैसे शुद्ध जल शुद्ध जलमें डालनेसे वैसा ही हो जाता है, इसी प्रकार हे गौतम ! अभेददर्शी मुनिका आत्मा वैसा ही शुद्ध हो जाता है ॥१३॥

जैसे एक ही अग्नि काष्ठसमूहमें प्रवेश करके अनेक प्रकारके रूपका हो जाता है, इसी प्रकार एक ही आत्मा सर्वभूतोंमें अनेक प्रकारका हो जाता है ॥१४॥

जैसे सब लोकोंका नेत्र सूर्य नेत्रके बाह्य दोषोंसे लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार सब भूतोंका अन्तरात्मा बाहरके लोकोंके दुःखसे लिप्त नहीं होता ॥१५॥

आत्मासे यह प्राण उत्पन्न होता है, जैसे पुरुषमें छाया है, इसी प्रकार इस आत्मामें यह प्राण समर्पित है, मनके संकल्पादि कर्मसे इस शरीरमें आता है ॥१६॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार पक्षी सायंकालको वृक्षमें स्थित होते हैं, इसी प्रकार वे सब परमात्मामें स्थित होते हैं ॥१७॥

यही देखनेवाला, छूनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, चखनेवाला, माननेवाला, जाननेवाला, करनेवाला विज्ञानात्मा पुरुष है, इस परमात्मामें सब स्थित है ॥१८॥

जैसे रथकी नाभिमें अरा होते हैं, इसी प्रकार जिसमें प्राण, श्रद्धा, प्रकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम—ये सोलह कला स्थित हैं, उस वेद्य पुरुषको तुम जानो, तुमको मरणरूप व्यथा मत हो ! ॥१९॥

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्ष-
मोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥२०॥
(मुण्ड० २।२।५)

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥२१॥
(मुण्ड० २।२।६)

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥२२॥
(मुण्ड० २।२।६)

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्य्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥२३॥
(मुण्ड० ३।१।५)

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥२४॥
(मुण्ड० ३।१।६)

जिसमें स्वर्गलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और मनसहित सब प्राण पिरोये हुए हैं, उस आत्माको जानो, अन्य बातोंको छोड़ो, वही अमृतका सेतु है ॥२०॥

जैसे रथनाभिमें अरे इसी प्रकार जहाँ नाड़ियाँ एकत्र हैं, वह यह बहुत प्रकारसे उत्पन्न होकर वर्तता है, उस आत्माका तमसे रहित परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये ओंकाररूपसे ध्यान करो, तुम्हारा कल्याण हो ॥२१॥

ज्योतिर्मय आनन्दमय कोशमें मलरहित निष्कल ब्रह्म है, इस शुद्ध, ज्योतियोंके ज्योतिको ब्रह्मात्मतत्त्वके जाननेवाले विवेकी जानते हैं ॥२२॥

सत्यसे, तपसे, सम्यग्ज्ञानसे और ब्रह्मचर्यसे यह नित्य आत्मा प्राप्त होता है, शरीरके भीतर ज्योतिर्मय और शुद्ध है, जिसको दोषरहित यति देखते हैं ॥२३॥

सत्यवादी ही जय पाता है, असत्यवादी जय नहीं पाता, सत्यसे ही देवयान-मार्ग प्रवृत्त होता है, जिस मार्गसे आप्तकाम ऋषि वहाँ आक्रमण करते हैं, जहाँ सत्यका परम स्थान है ॥२४॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥२५॥
(मुण्ड० ३।१।७)

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥२६॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो
यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥२७॥
(मुण्ड० ३।१।८,९)

वह बृहत् महान् है, दिव्य है, अचिन्त्य है, वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर नाना प्रकारसे भासता है, वह दूरसे भी अति दूर है और पास भी है, इसको अपनी बुद्धिरूप गुहामें देखे ॥२१॥

यह आत्मा नेत्रसे, वाणीसे, अन्य इन्द्रियोंसे, तपसे अथवा कर्मसे ग्रहण नहीं किया जाता, ज्ञानके प्रसादसे शुद्ध अन्तःकरणवाला ध्यान करता हुआ, इस कलारहितको देखता है। इस सूक्ष्म आत्माको जिसमें पाँच प्रकारके प्राण प्रविष्ट हैं, चित्तसे जानना चाहिये, सब प्राणियोंके चित्त प्राणरूप इन्द्रियोंसे व्याप्त हैं, जिस शुद्ध चित्तमें यह आत्मा प्रकाशता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

वैराग्यबोधकश्रुतयः

ॐ ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

(ईश० १)

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैत-
त्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २ ॥

(कठ० १ । १ । २६)

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा ।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ ३ ॥

(कठ० १ । १ । २७)

अजीर्यताममृतानामुपेत्य
जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् ।
अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदा-
नतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥ ४ ॥

(कठ० १ । १ । २८)

वैराग्यबोधक श्रुतियाँ

इस जगत्में जितने चराचर पदार्थ हैं, वे सब ईश्वरसे व्याप्त हैं, इसलिये त्यागसे हे शिष्य! अपनी रक्षा कर, किसीका भी धन मत ले ॥१॥

हे यम! स्त्री आदि भोग क्षणभङ्गुर हैं, कलतक अर्थात् नियत कालतक ठहरनेवाले हैं। ये भोग इन्द्रियोंके तेजको क्षीण कर देते हैं, इसलिये अनर्थरूप हैं। तिसपर सबका जीवन भी अल्प ही है, इसलिये आप अपने रथादिक और नृत्यगान आदिको अपने पास ही रहने दीजिये, मुझे नहीं चाहिये ॥२॥

धनसे मनुष्य कभी तृप्त होनेवाला नहीं है। धन तो मुझे आपके दर्शनसे ही प्राप्त हो गया है क्योंकि जबतक आप शासन करेंगे, तबतक मैं आपका शिष्य जीता रहूँगा। मैं तो वह आत्मज्ञान वर चाहता हूँ, अन्य कुछ नहीं चाहता ॥३॥

जरारहित, चिरकालजीवी देवताओंके पास आकर भी पृथिवीपर रहनेवाला, जरा-धर्मवाला ऐसा कौन-सा मूढ़ मनुष्य होगा, जो नश्वरफल माँग लेगा। दिव्य स्त्रियोंका सौन्दर्य, उनके साथ क्रीडा और उससे उत्पन्न हुआ सुख अनित्य और दुःखरूप है, ऐसा जानकर भी चिरकाल जीनेकी कौन इच्छा करेगा? कोई भी नहीं करेगा ॥४॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम् ।
स्तोमं महदुरुगायं प्रतिष्ठां
दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ ५ ॥
(कठ० १ । २ । ११)

पराचः कामाननुयन्ति बाला-
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ ६ ॥
(कठ० २ । ४ । २).

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ ७ ॥
(कठ० २ । ६ । १४).

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥ ८ ॥
(कठ० २ । ६ । १५).

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ९ ॥
(मुण्ड० १ । २ । ११).

सर्व कामनाओंकी प्राप्तिरूप, जगत्का आधार, उपासनाओंका अनन्त फल, अभयकी अवधि, स्तुति करने योग्य, महान्, जिसको वेद पूर्ण कहते हैं, ऐसे निरतिशय स्थितिरूप हिरण्यगर्भके पदको भी तूने धैर्यसे त्याग दिया है, इसलिये हे नचिकेता ! तू मुझसे भी अधिक धैर्यवाला है ॥५॥

जो मूढ़ बाहरकी कामनाओंको भजते हैं, वे विषयासक्त पुरुष आधि-व्याधिरूपसे फैले हुए मृत्युके पाशको प्राप्त होते हैं, इसलिये धीर पुरुष नित्य अमृतत्वको जानकर अनित्य वस्तुओंकी इच्छा नहीं करते ॥६॥

जब इस विद्वान्के हृदयमें स्थित सब कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है और इसी शरीरमें ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥७॥

जब यहाँ यानी जीवित अवस्थामें ही इस विद्वान्के हृदयकी ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है, इतना ही वेदका उपदेश है, अधिक नहीं है ॥८॥

जो पुरुष विद्वान् और शान्त भिक्षाचरण करते हुए निर्जन वनमें बसते हैं, तपरूप स्वधर्म और श्रद्धाका सेवन करते हैं, वे विद्वान् पाप-रहित होकर सूर्य-मार्गसे सत्यलोकको प्राप्त होते हैं, जहाँ अव्ययस्वरूप अमृतरूप पुरुष है ॥९॥

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१०॥
(मुण्ड० १ । २ । १२)

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥११॥
(मुण्ड० ३ । २ । ६)

न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥ १२ ॥
(कैवल्य० १ । ३)

ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेत् । गृही भूत्वा वनी भवेत् । वनी भूत्वा प्रव्रजेत् । यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा ॥१३॥
(जाबाल० ४)

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ॥ १४ ॥
(बृह० ३ । ५ । १)

कर्मद्वारा प्राप्त होनेवाले लोकोंको अनित्य जानकर वैराग्यको प्राप्त होवे, क्योंकि कृत यानी कर्मसे अकृतरूप ब्रह्म यानी मोक्ष प्राप्त नहीं होता, इसलिये ब्रह्मके जाननेके लिये श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप समित् आदि उपहार लेकर वह अधिकारी जावे ॥१०॥

वेदान्तके विज्ञानके विषयरूप परमात्माको निश्चय कर लेनेवाले संन्यास-योगसे शुद्ध चित्तवाले यति ब्रह्मलोकमें लिंग-शरीरके नाशके पश्चात् ब्रह्मात्मस्वरूप हो सब मुक्त हो जाते हैं ॥११॥

कर्मसे, प्रजासे अथवा धनसे विद्वानोंने अमृतरूप मोक्ष नहीं प्राप्त किया है, किन्तु एक त्यागसे ही मोक्ष प्राप्त किया है ॥१२॥

ब्रह्मचर्यको समाप्त करके गृहस्थ होवे, गृहस्थ होकर वानप्रस्थ होवे, वानप्रस्थ होकर संन्यासी होवे। यदि वैराग्य हो तो ब्रह्मचर्यसे, गृहस्थसे अथवा वानप्रस्थसे ही संन्यास धारण कर ले ॥१३॥

उस इस आत्माको जानकर पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा त्यागकर ब्राह्मण भिक्षाचरण करते हैं ॥१४॥

मनोनाशोपायबोधकश्रुतयः

सर्वशक्तेर्महेशस्य विलासो हि मनो जगत् ।
संयमासंयमाभ्यां च संसारं शान्तिमन्वगात् ॥ १ ॥

(महोपनिषद् ४ । ८७)

मनो व्याधेश्चिकित्सार्थमुपायं कथयामि ते ।
यद्यत्स्वाभिमतं वस्तु तत्त्यजन्मोक्षमश्नुते ॥ २ ॥

(महोपनिषद् ४ । ८८)

स्वायत्तमेकान्तहितं स्वेप्सिितत्यागवेदनम् ।
यस्य दुष्करतां यातं धिक्तं पुरुषकीटकम् ॥ ३ ॥

(महोपनिषद् ४ । ८९)

स्वपौरुषैकसाध्येन स्वेप्सिततत्यागरूपिणा ।
मनःप्रशममात्रेण विना नास्ति शुभा गतिः ॥ ४ ॥

(महोपनिषद् ४ । ९०)

असंकल्पेन शस्त्रेण छिन्नं चित्तमिदं यदा ।
सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ५ ॥

(महोपनिषद् ४ । ९१)

भव भावनया मुक्तो मुक्तः परमया धिया ।
धारयात्मानमव्यग्रो ग्रस्तचित्तं चितःपदम् ॥ ६ ॥

(महोपनिषद् ४ । ९२)

मनोनाशोपायबोधक श्रुतियाँ

सर्वशक्तिमान् महेश्वरका मनरूप जगत् विलास है, मनके असंयमसे संसार है और मनके संयमसे शान्ति है ॥१॥

मनरूप व्याधिकी चिकित्सा—इलाजका उपाय मैं तुमसे कहता हूँ, जो-जो वस्तु अपनेको प्यारी है, इस-इसको त्यागनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥२॥

अपनी इष्टवस्तुका त्याग और अपने अत्यन्त हितकी बात जो अपने अधिकारमें है, ये दोनों जिसको कठिन प्रतीत होते हैं, उस कीट-रूप पुरुषको धिक्कार है ॥३॥

अपने पुरुषार्थसे ही केवल साध्य, अपनी इष्टरूप वस्तुओंके त्याग-रूप मनके प्रशमन करनेके विना शुभ गति नहीं प्राप्त होती ॥४॥

जब असंकल्प—संकल्प न करनेरूप शस्त्रसे यह चित्त काट दिया जाता है, तब अधिकारी सर्व, सर्वगत, शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥५॥

संसारकी भावनासे मुक्त हो, परम बुद्धिसे मुक्त हो, अव्यग्र होकर, वश किये हुए चित्तको चैतन्य पदमें धारण कर ॥६॥

परं पौरुषमाश्रित्य नीत्वा चित्तमचित्तताम् ।
ध्यानतो हृदयाकाशे चिति चिच्चक्रधारया ॥ ७ ॥
(महोपनिषद् ४ । ९३)

मनो मारय निःशङ्कं त्वां प्रवध्नन्ति नारयः ॥ ८ ॥
(महोपनिषद् ४ । ९४)

अयं सोऽहमिदं तन्म एतावन्मात्रकं मनः ।
तदभावनमात्रेण दात्रेणेव विलीयते ॥ ९ ॥
(महोपनिषद् ४ । ९५)

छिन्नाभ्रमण्डलं व्योम्नि यथा शरदि धूयते ।
वातेन कल्पकेनैव तथान्तर्धूयते मनः ॥१०॥
(महोपनिषद् ४ । ९६)

कल्पान्तपवना वान्तु यान्तु चैकत्वमर्णवाः ।
तपन्तु द्वादशादित्या नास्ति निर्मनसः क्षतिः ॥११॥
(महोपनिषद् ४ । ९७)

असंकल्पनमात्रैकसाध्ये सकलसिद्धिदे ।
असंकल्पातिसाम्राज्ये तिष्ठावष्टब्ध तत्पदः ॥१२॥
(महोपनिषद् ४ । ९८)

न हि चञ्चलताहीनं मनः क्वचित् दृश्यते ।
चञ्चलत्वं मनो धर्मो वह्नेर्धर्मो यथोष्णता ॥१३॥
(महोपनिषद् ४ । ९९)

एषा हि चञ्चलास्पन्दशक्तिश्चित्तत्वसंस्थिता ।
तां विद्धि मानसीं शक्तिं जगदाडम्बरात्मिकाम् ॥१४॥
(महोपनिषद् ४ । १००)

परम पुरुषार्थका आश्रय करके हृदयाकाशरूप चेतनमें अखण्ड धारा-प्रवाहसे ध्यान करता हुआ चित्तको अचित्त कर दे ॥७॥

मनको मार दे, तुझ निःशङ्कको स्त्रियाँ बाँधती हैं ॥८॥

यह, वह, मैं, यह, वह मेरा, इतना ही मात्र मन है, उनकी भावना न करना रूप हँसिये यानी दाँतीसे मन लय हो जाता है ॥९॥

जैसे शरदृऋतुमें वायुसे छिन्न हुआ मेघमण्डल आकाशमें लय हो जाता है, इसी प्रकार संकल्पके त्यागसे मन भीतर ही लय हो जाता है ॥१०॥

कल्पान्तकी पवनें चलें, समुद्र एकत्र हो जायँ, बारह आदित्य तपें, निर्मन्त्र पुरुषको कुछ हानि नहीं है ॥११॥

सकल-सिद्धि देनेवाले, असंकल्पमात्रसे साध्य असंकल्परूपसे परे साम्राज्यमें तत्पदके आश्रित होकर बैठ जा ॥१२॥

चञ्चलतारहित मन कहीं दिखायी नहीं देता, जैसे अग्निका धर्म उष्णता है, इसी प्रकार मनका धर्म चञ्चलता है ॥१३॥

यही चञ्चल स्पन्दशक्ति चित्तरूपसे स्थित है, इस मानसी शक्तिको जगत् आडम्बररूप जान ॥१४॥

यत्तु चञ्चलताहीनं तन्मनोऽमृतमुच्यते ।
तदेव च तपः शास्त्रसिद्धान्ते मोक्ष उच्यते ॥१५॥
(महोपनिषद् ४ । १०१)

तस्य चञ्चलता यैषा त्वविद्या वासनात्मिका ।
वासनापरनाम्नीं तां विचारेण विनाशय ॥१६॥
(महोपनिषद् ४ । १०२)

पौरुषेण प्रयत्नेन यस्मिन्नेव पदे मनः ।
योज्यते तत्पदं प्राप्य निर्विकल्पो भवानघ ॥१७॥
(महोपनिषद् ४ । १०३)

अतः पौरुषमाश्रित्य चित्तमाक्रम्य चेतसा ।
विशोकं पदमालम्ब्य निरातङ्कः स्थिरो भव ॥१८॥
(महोपनिषद् ४ । १०४)

मन एव समर्थं हि मनसो दृढनिग्रहे ।
अराजकः समर्थः स्याद्राज्ञो निग्रहकर्मणि ॥१९॥
(महोपनिषद् ४ । १०५)

तृष्णाग्राहगृहीतानां संसारार्णवपातिनाम् ।
आवर्तैरुह्यमानानां दूरं स्वमन एव नौः ॥२०॥
(महोपनिषद् ४ । १०६)

मनसैव मनश्छित्त्वा पाशं परमबन्धनम् ।
भवादुत्तारयात्मानं नासावन्येन तार्यते ॥२१॥
(महोपनिषद् ४ । १०७)

और जो चञ्चलतासे हीन है, वह मन अमृत कहलाता है, वही तप शास्त्र और सिद्धान्तमें मोक्ष कहलाता है ॥१५॥

जो उस मनकी यह चञ्चलता है, वह वासनास्वरूप अविद्या है, 'वासना' इस दूसरे नामवाली चञ्चलता विचारसे नाश कर ॥१६॥

पुरुषार्थरूप प्रयत्नसे जिस पदमें मन जोड़ा जाता है, इस पदको प्राप्त करके हे अनघ ! निर्विकल्प हो जा ॥१७॥

इसलिये पुरुषार्थका आश्रय करके चित्तको चित्तसे दबाकर शोक-रहित पदका आलम्बन करके निर्भय और स्थिर हो जा ॥१८॥

मनके दृढ़ निग्रह करनेमें मन ही समर्थ होता है, जैसे राजाके निग्रह-कर्ममें अराजक समर्थ होता है ॥१६॥

तृष्णारूप ग्राहसे पकड़े हुए, संसार-समुद्रमें पड़े हुए, भँवरोंसे थपेड़े खाते हुओंके लिये अपनी मनरूपी नौका ही दूर है ॥२०॥

मनसे ही मनका पाशरूप बन्धन काटकर संसारसे आत्माको तार, अन्यसे वह तारा नहीं जाता ॥२१॥

या योदेति मनोनाम्नी वासनावासितान्तरा ।
तां तां परिहरेत्प्राज्ञस्ततोऽविद्याक्षयो भवेत् ॥२२॥
(महोपनिषद् ४ । १०८)

भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज त्वं भेदवासनाम् ।
भावाभावौ ततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखी भव ॥२३॥
(महोपनिषद् ४ । १०९)

एष एव मनोनाशस्त्वविद्यानाश एव च ।
यत्तत्संवेद्यते किञ्चित्तत्रास्थापरिवर्जनम् ॥२४॥
(महोपनिषद् ४ । ११०)

अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्थापरिग्रहः ॥२५॥
(महोपनिषद् ४ । १११)

अविद्या विद्यमानैव नष्टप्रज्ञेषु दृश्यते ।
नाम्नैवाङ्गीकृताकारा सम्यक्प्रज्ञस्य सा कुतः ॥२६॥
(महोपनिषद् ४ । ११२)

भीतर बसी हुई मन-नामकी जो-जो वासना उदय हो, उस-उसको प्राज्ञ त्याग देवे, तब अविद्या क्षय हो जाती है ॥२२॥

भोगकी मुख्य वासनाको त्यागकर तू भेद-वासनाको त्याग दे, पीछे भाव-अभावको त्यागकर निर्विकल्प सुखी हो जा ॥२३॥

यह जो कुछ जाननेमें आता है, उसमें आस्थाका छोड़ देना, यही मनोनाश है और यही अविद्याका नाश है ॥२४॥

अनास्था ही मोक्ष है, आस्थाको पकड़े रहना दुःख है ॥२५॥

नष्ट प्रज्ञावालोंमें अविद्या विद्यमान ही दिखायी देती है। नाम-मात्रसे अङ्गीकार किये हुए आकारवाली वह सम्यग्ज्ञानीमें कहाँ है। भाव यह है कि पागल और ज्ञानीमें महान् भेद है ॥२६॥

ज्ञानयोगाङ्गबोधकश्रुतयः

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः ।
आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः ॥ १ ॥
प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा ।
आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात् ॥ २ ॥
सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः ।
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥
सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः ।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥ ४ ॥
त्यागो हि महता पूज्यः सद्यो मोक्षप्रदायकः ॥ ५ ॥
यस्माद्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा बुधः ॥ ६ ॥
वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते ।
प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः ॥ ७ ॥
इति वा तद्भवेन्मौनं सर्वं सहजसंज्ञितम् ।
गिरां मौनं तु बालानामयुक्तं ब्रह्मवादिनाम् ॥ ८ ॥
आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते ।
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः ॥ ९ ॥
कल्पना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः ।
कालशब्देन निर्दिष्टं ह्यखण्डानन्दमद्वयम् ॥ १० ॥

ज्ञानयोगाङ्गबोधक श्रुतियाँ

यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृक्स्थिति ॥ १ ॥

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान और समाधि ये क्रमसे पन्द्रह अङ्ग कहे हैं ॥ २ ॥

'सब ब्रह्म ही है' इस प्रकारके ज्ञानसे इन्द्रियोंके संयमको यम कहते हैं, इसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये ॥ ३ ॥

सजातीय वृत्तिका प्रवाह और विजातीय वृत्तिका तिरस्कार, इस परानन्दरूप नियमको विद्वान् सदा करते हैं ॥ ४ ॥

त्याग महान् पुरुषोंका पूज्य है और शीघ्र ही मोक्षका देनेवाला है ॥ ५ ॥

जिस मौनको न प्राप्त होकर मनसहित वाणी लौट आती है और जो योगियोंको ही प्राप्त होता है, इसको विद्वान् सर्वदा भजे ॥ ६ ॥

जिससे वाणी लौट आती है, इसको कौन कह सकता है? यदि प्रपञ्च कथन करनेयोग्य है, तो वह भी शब्दरहित है ॥ ७ ॥

इस प्रकार सर्वसहज नामक मौन होना चाहिये, वाणीका मौन तो बालकोंका है, ब्रह्मवादियोंके करनेयोग्य नहीं है ॥ ८ ॥

आदि, मध्य और अन्तमें जिसमें जन नहीं है, परन्तु जिससे यह सब व्याप्त है, वह देश निर्जन माना गया है ॥ ९ ॥

ब्रह्मा आदि सर्व भूतोंकी निमेषकी गणनासे जो कल्पना होती है, वह अखण्ड अद्वय 'काल' शब्दसे कहा गया है ॥ १० ॥

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुखविनाशनम् ॥११॥
सिद्धये सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमद्वयम् ।
यस्मिन्सिद्धिं गताः सिद्धास्तत्सिद्धासनमुच्यते ॥१२॥
यन्मूलं सर्वलोकानां यन्मूलं चित्तबन्धनम् ।
मूलबन्धः सदा सेव्यो योग्योऽसौ ब्रह्मवादिनाम् ॥१३॥
अङ्गानां समता विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते ।
नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ॥१४॥
दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् ।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ॥१५॥
द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् ।
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी ॥१६॥
चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥१७॥
निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरितः ।
ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरुच्यते ॥१८॥
ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः ।
अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां प्राणपीडनम् ॥१९॥
विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जकम् ।
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥२०॥

जिसमें सुखसे ही सतत तत्त्वरूप ब्रह्मका चिन्तन हो, इसको आसन जाने, अन्यथा सुखका नाश होता है ॥ ११ ॥

सब भूतोंरूप विश्वके अद्वय अधिष्ठान जिसमें सिद्धिके लिये बैठकर सिद्ध लोग सिद्धिको प्राप्त होते हैं, वह सिद्धासन कहलाता है ॥ १२ ॥

जो सब लोकोंका मूल है, तथा चित्तके बन्धनका जो मूल है, वह मूलबन्ध ब्रह्मवादियोंको सदा सेवन करनेयोग्य है ॥ १३ ॥

सम ब्रह्ममें लीन होनेको ही अङ्गोंकी समता जाननी चाहिये। नहीं तो सूखे वृक्ष-सम सीधा हो जाना समता नहीं है ॥ १४ ॥

ज्ञानमयी दृष्टि करके जगत्को ब्रह्ममय देखे, वही दृष्टि परम उदार है, नासाग्रको देखनेवाली उदार नहीं है ॥ १५ ॥

द्रष्टा, दर्शन और दृश्यका जहाँ विराम हो जाता है, वहाँ ही दृष्टि करनी चाहिये, न कि नासाग्र देखनेवाली ॥ १६ ॥

चित्तादि सब पदार्थोंमें ब्रह्मके एकत्वकी भावनासे सब वृत्तियोंका जो निरोध है, वह प्राणायाम कहलाता है ॥ १७ ॥

प्रपञ्चका निषेध करना रेचक कहलाता है, 'मैं ब्रह्म ही हूँ' यह वृत्ति पूरक प्राणायाम कहलाता है ॥ १८ ॥

पीछे उस वृत्तिकी निश्चलता कुम्भक प्राणायाम है, यह भी विद्वानोंका है, अज्ञानियोंका प्राणायाम तो श्वासको दबाना है ॥ १९ ॥

विषयोंमें आत्मरूपता देखकर मनसे चित्तको रञ्जन करनेको प्रत्याहार जानना चाहिये और इसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये ॥ २० ॥

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।
मनसा धारणं चैव धारणा सा परा मता ॥२१॥
ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ।
ध्यानशब्देन विख्यातः परमानन्ददायकः ॥२२॥
निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ॥२३॥
इमं चाकृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत् ।
लक्ष्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रत्यक्त्वं सम्भवेत्स्वयम् ॥२४॥
ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट् ।
तत्स्वरूपं भवेत्तस्य विषयो मनसो गिराम् ॥२५॥
भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता ।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तया पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥२६॥
ये हि वृत्तिं विहायैनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम् ।
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ॥२७॥
ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये ।
ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये ॥२८॥

(तेजोबिन्दु १)
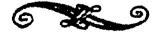
जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ मनसे ब्रह्मके दर्शनरूप धारणा ही धारणा, परम धारणा मानी गयी है ॥ २१ ॥

'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसी सत् वृत्तिसे निरालम्ब होकर स्थित होना ही ध्यान कहलाता है, यह परमानन्ददायक है ॥ २२ ॥

निर्विकार-वृत्तिसे फिर ब्रह्माकार-वृत्तिसे वृत्तिका सम्यक् विस्मरण समाधि कहलाता है ॥ २३ ॥

इस वास्तविक आनन्दका तबतक भली प्रकार अभ्यास करे जब-तक पुरुषका लक्ष्य क्षणभरमें स्वयं प्रत्यक्रूप न हो जाय ॥ २४ ॥

जब समाधिसे मुक्त होकर योगिराज सिद्ध हो जाता है, तत्त्वरूप उसके मन-वाणीका विषय हो जाता है ॥ २५ ॥

भाव-वृत्तिसे भावत्व है, शून्य-वृत्तिसे शून्यता है, ब्रह्म-वृत्तिसे पूर्णता है, इस ब्रह्म-वृत्तिसे पूर्णताका अभ्यास करे ॥ २६ ॥

जो इस ब्रह्म-नाम्नी परम पावनी वृत्तिको छोड़कर जीते हैं, वे नर-पशुके समान वृथा ही जीते हैं ॥ २७ ॥

जो वृत्तिको जानते हैं और जानकर बढ़ाते हैं, वे सत्पुरुष धन्य हैं और तीनों लोकोंके वन्दन करनेयोग्य हैं ॥ २८ ॥

सप्तज्ञानभूमिकास्वरूपबोधकश्रुतयः

ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात्प्रथमा समुदीरिता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा ॥ १ ॥

सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ २ ॥

स्थितः किं मूढ एवास्मि प्रेक्ष्योऽहं शास्त्रसज्जनैः ।
वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ॥ ३ ॥

शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम् ।
सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥ ४ ॥

विचारणा शुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषु रक्तता ।
यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसी ॥ ५ ॥

भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थविरतेर्वशात् ।
सत्त्वात्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥ ६ ॥

दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गफला तु या ।
रूढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ताऽसंसक्तिनामिका ॥ ७ ॥

भूमिकापञ्चकाभ्यासात्स्वात्मारामतया भृशम् ।
आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात् ॥ ८ ॥

परप्रयुक्तेन चिरं प्रत्ययेनावबोधनम् ।
पदार्थभावना नाम षष्ठी भवति भूमिका ॥ ९ ॥

सप्तज्ञानभूमिकास्वरूपबोधक श्रुतियाँ

शुभेच्छा ज्ञानकी प्रथम भूमिका है, विचारणा दूसरी है और तनुमानसा तीसरी है ॥ १ ॥

सत्त्वापत्ति चौथी है, असंसक्ति पाँचवीं है, पदार्थभावना छठी है और सातवीं तुर्यगा है ॥ २ ॥

क्या मूढ़के समान मैं बैठा हूँ ? शास्त्र और सज्जनोंसे मुझे शिक्षा लेनी चाहिये, वैराग्यपूर्वक ऐसी इच्छाको पण्डितोंने शुभेच्छा कहा है ॥ ३ ॥

शास्त्र-सज्जनके सम्पर्क और वैराग्याभ्यासपूर्वक सदाचारमें जो प्रवृत्ति है, वह विचारणा कहलाती है ॥ ४ ॥

विचारणा और शुभेच्छाके अभ्याससे इन्द्रियोंके विषयोंमें जिसमें आसक्ति कम हो जाती है, वह अवस्था तनुमानसा कहलाती है ॥ ५ ॥

तीनों भूमिकाओंके अभ्याससे चित्तमें पदार्थोंसे वैराग्य होनेसे शुद्ध आत्मसत्त्वमें जो स्थिति है, वह सत्त्वापत्ति कहलाती है ॥ ६ ॥

चारों भूमिकाओंके अभ्याससे जो असंसर्गरूप फलवाली और सत्त्वके चमत्कारसे युक्त है, वह असंसक्ति नामकी पाँचवीं अवस्था है ॥ ७ ॥

पाँचों भूमिकाओंके अभ्याससे, आत्मामें अधिक रमण करनेसे और भीतर-बाहरके पदार्थोंकी अभावनासे ॥ ८ ॥

परमात्मामें देरतक प्रयुक्त होनेसे प्रत्यय-वृत्तिसे जो जानना है, वह पदार्थभावना नामकी छठी भूमिका है ॥ ९ ॥

षड्भूमिकाचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भनात् ।
यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ॥१०॥
शुभेच्छादित्रयं भूमिभेदाभेदयुतं स्मृतम् ।
यथावद्भेदबुद्ध्येदं जगत् जाग्रति दृश्यते ॥११॥
अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते ।
पश्यन्ति स्वप्नवल्लोकं तुर्यभूमिसुयोगतः ॥१२॥
विच्छिन्नशरदभ्रांशविलयं प्रविलीयते ।
सत्त्वावशेष एवास्ते हे निदाघ दृढीकुरु ॥१३॥
पञ्चभूमिं समारुह्य सुषुप्तिपदनामिकाम् ।
शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रके ॥१४॥
अन्तर्मुखतया नित्यं बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् ।
परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥१५॥
कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूम्यां सम्यग्विवासनः ।
सप्तमी गाढसुप्ताख्या क्रमप्राप्ता पुरातनी ॥१६॥
यत्र नासन्नसद्रूपो नाहं नाप्यनहंकृतिः ।
केवलं क्षीणमननमास्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः ॥१७॥

छः भूमिकाओंके अभ्याससे भेदके दूर हो जानेसे, जो स्वभावरूप एकनिष्ठता है, वह तुर्यगा वृत्ति जाननी चाहिये ॥ १० ॥

शुभेच्छादि तीन भूमिका भेद-अभेद-सहित मानी हैं, इनमें यथावत् बुद्धिसे जाग्रत्में जगत् देखनेमें आता है ॥ ११ ॥

अद्वैतके स्थिर हो जानेपर और द्वैतके शान्त हो जानेपर चौथी भूमिकाके संयोगसे जगत्को स्वप्नवत् देखते हैं ॥ १२ ॥

छिन्न हुए शरद्के बादलके समान विश्व लय हो जाता है केवल सत्त्व ही अवशेष रहता है, उस भूमिकामें हे निदाघ दृढ़ कर ॥ १३ ॥

सुषुप्ति-पद नामवाली पाँचवीं भूमिमें आरूढ़ होकर, सम्पूर्ण विशेष अंशके शान्त होनेपर अद्वैतमात्रमें स्थित होता है ॥ १४ ॥

बाह्यवृत्तिपरायण होकर भी नित्य अन्तर्मुख होनेसे थकावटके कारण निद्रालु-सा दीखता है ॥ १५ ॥

इन भूमिकाओंमें अभ्यास करता हुआ भली प्रकार निर्वासना होकर सातवीं गाढ सुषुप्ति नामकी पुरातनी भूमि क्रमसे प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

जहाँपर न सत् है, न असत् है, न अहङ्कार है, केवल, क्षीणसंकल्प, अद्वैत, अति निर्भय है ॥ १७ ॥

अध्यारोपापवादबोधकश्रुतयः

प्रकृतित्वं ततः सृष्टं सत्त्वादिगुणसाम्यतः ।
सत्यमाभाति चिच्छाया दर्पणे प्रतिबिम्बवत् ॥ १ ॥
तेन चित्प्रतिबिम्बेन त्रिविधा भाति सा पुनः ।
प्रकृत्यवच्छिन्नतया पुरुषत्वं पुनश्च ते ॥ २ ॥
शुद्धसत्त्वप्रधानायां मायायां बिम्बतो ह्यजः ।
सत्त्वप्रधाना प्रकृतिर्मायेति प्रतिपाद्यते ॥ ३ ॥
सा माया स्ववशोपाधिः सर्वज्ञस्येश्वरस्य हि ।
वश्यमायत्वमेकत्वं सर्वज्ञत्वं च तस्य तु ॥ ४ ॥
सात्त्विकत्वात्समष्टित्वात्साक्षित्वाज्जगतामपि ।
जगत्कर्तुमकर्तुं वा चान्यथा कर्तुमीशते ॥ ५ ॥
यः स ईश्वर इत्युक्तः सर्वज्ञत्वादिभिर्गुणैः ।
शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृत्तिरूपकम् ॥ ६ ॥
विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादिब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत् ।
अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः ॥ ७ ॥
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम् ।
साक्षिणः पुरतो भातं लिङ्गदेहेन संयुतम् ॥ ८ ॥
चितिच्छायासमावेशाज्जीवः स्याद्व्यावहारिकः ।
अस्य जीवत्वमारोपात्साक्षिण्यप्यवभासते ॥ ९ ॥

अध्यारोपापवादबोधक श्रुतियाँ

उस सच्चिदानन्दसे प्रकृतिपना उत्पन्न हुआ, गुणोंकी साम्यतासे चेतनकी छाया दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान सत्य भासती है ॥ १ ॥

फिर वह उस चेतनके प्रतिबिम्बसे तीन प्रकारकी भासती है, प्रकृतिसे अवच्छिन्न होनेसे उसका पुरुषत्व है ॥ २ ॥

शुद्ध सत्वप्रधान मायामें बिम्बित हुआ अज्ञ सत्वप्रधान प्रकृति—माया कहा जाता है ॥ ३ ॥

सर्वज्ञ ईश्वरकी वह माया स्ववश उपाधि है, मायाका वशपना, एकपना और सर्वज्ञपना उस ईश्वरका है ॥ ४ ॥

सात्विकता, समष्टिता और जगत्का साक्षित्व होनेसे ईश्वर जगत्के करने, न करने और अन्यथा करनेको समर्थ है ॥ ५ ॥

सर्वज्ञत्व आदि गुणोंसे वह ईश्वर कहलाता है। विक्षेप और आवरणरूप दो मायाकी शक्ति हैं ॥ ६ ॥

लिङ्गसे लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त जगत्को विक्षेप-शक्ति उत्पन्न करती है, द्रष्टा और दृश्यका भेद भीतर है, बाहर ब्रह्म और सृष्टिका भेद है ॥७॥

वह दूसरी शक्ति साक्षीसे भासनेवाले लिङ्गदेहसे युक्त संसारका कारणरूप ढाँकनेवाली है ॥ ८ ॥

चेतनकी छायाके समावेशसे जीव व्यवहारी हो जाता है, उसका जीवत्व साक्षीमें आरोपसे भासता है ॥ ९ ॥

आवृतौ तु विनष्टायां भेदे भातेऽप्ययाति तत् ।
तथा सर्गब्रह्मणोश्च भेदमावृत्य तिष्ठति ॥१०॥

या शक्तिस्तद्वशाद्ब्रह्म विकृतत्वेन भासते ।
अत्राप्यावृतिनाशेन विभाति ब्रह्मसर्गयोः ॥११॥

भेदस्तयोर्विकारः स्यात्सर्गे न ब्रह्मणि क्वचित् ।
अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ॥१२॥

आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।
उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्परः ॥१३॥

समाधिं सर्वदा कुर्याद् हृदये वाथ वा बहिः ।
सविकल्पो निर्विकल्पः समाधिर्द्विविधो हृदि ॥१४॥

दृश्यशब्दानुभेदेन सविकल्पः पुनर्द्विधा ।
कामाद्याश्चित्तगा दृश्यास्तत्साक्षित्वेन चेतनम् ॥१५॥

ध्यायेद्दृश्यानुविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ।
असङ्गसच्चिदानन्दः स्वप्रभो द्वैतवर्जितः ॥१६॥

अस्मीति शब्दविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ।
स्वानुभूतिरसावेशाद्दृश्यशब्दाद्यपेक्षितुः ॥१७॥

निर्विकल्पसमाधिः स्यान्निवातस्थितदीपवत् ।
हृदीव बाह्यदेशेऽपि यस्मिन्कस्मिंश्च वस्तुनि ॥१८॥

समाधिराद्य सन्मात्रान्नामरूपपृथक्कृतिः ।
स्तब्धीभावो रसास्वादात्तृतीयः पूर्ववन्मतः ॥१९॥

आवरणके नष्ट हो जानेपर और भेद-भावके नष्ट हो जानेपर वह जीवत्व नष्ट हो जाता है और सर्ग और ब्रह्मके भेदको ढाँककर स्थित होता है ॥१०॥

जो शक्ति है, उस शक्तिके वशसे ब्रह्म विकाररूपसे भासता है, इसमें भी आवरणके नाश होनेपर ब्रह्म और सर्ग निभिन्न भासते हैं॥११॥

सर्गमें दोनोंका भेद और विकार है, ब्रह्ममें कहीं नहीं है। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप—ये पाँच अंश हैं ॥१२॥

आदिके तीन ब्रह्मरूप हैं और पिछले दो जगत्‌रूप हैं, नामरूप दोनोंको छोड़कर सच्चिदानन्दपरायण होकर ॥१३॥

हृदयमें या बाहर सर्वदा समाधि करे, हृदयमें सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकारकी समाधि है ॥१४॥

दृश्य और शब्दके भेदसे सविकल्प समाधि दो प्रकारकी है, कामादि चित्तगत दृश्य हैं, इनको साक्षीरूपसे चेतनरूप ॥१५॥

ध्यान करे, यह दृश्यानुविद्ध सविकल्पक समाधि है। असङ्ग, सच्चिदानन्द स्वप्रकाश, द्वैतरहित ॥१६॥

मैं हूँ, यह शब्दविद्ध सविकल्पक समाधि है। स्वानुभव और रसके आवेशसे दृश्य और शब्दादिकी अपेक्षा भिन्न ॥१७॥

निर्विकल्प समाधि निर्वातस्थित दीपके समान होती है, चाहे वह हृदयमें हो चाहे बाह्यदेशमें किसी वस्तुमें हो ॥१८॥

सन्मात्रसे नामरूपका पृथक् करना आद्य समाधि है, स्तब्धीभाव दूसरा है और रसास्वाद तीसरा पूर्वके समान माना गया है ॥१९॥

एतैः समाधिभिः षड्भिर्नयेत्कालं निरन्तरम् ।
देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम् ॥२०॥
(सरस्वती)

स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि । कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ २१॥

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् । मनोऽन्नं अन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोकाः लोकेषु च नाम च ॥ २२ ॥

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ २३ ॥

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥२४॥
(प्रश्न० ६ । ३, ४, ५, ६)
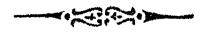
इन छः समाधियोंको करता हुआ कालको निरन्तर व्यतीत करे, देहाभिमानके गलित होनेपर और परमात्माके जाननेपर जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ परम अमृत है ॥ २० ॥

उस पुरुषने ईक्षण—विचार किया। किसके निकल जानेसे मैं निकला हुआ होऊँगा और किसके स्थित रहनेसे मैं स्थित रहूँगा ॥ २१ ॥

उसने प्राणको उत्पन्न किया, प्राणसे श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन और अन्नको उत्पन्न किया, अन्नसे वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोकोंको उत्पन्न किया और लोकोंमें नाम उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

दृष्टान्त—जैसे ये बहती हुई समुद्रमें जानेवाली नदियाँ समुद्रको प्राप्त होकर अस्त हो जाती हैं, उनके नाम-रूप नष्ट हो जाते हैं और समुद्र ही कही जाती हैं, इसी प्रकार इस सबके साक्षीकी सोलह कलाएँ पुरुषकी तरफ जाती हुई पुरुषको प्राप्त होकर अस्त हो जाती हैं, इनके नाम-रूप नष्ट हो जाते हैं और वे पुरुष ही कहलाती हैं। वह कला-रहित अमृत है इस विषयमें यह श्लोक है ॥ २३ ॥

रथनाभिमें अरोंके समान जिसमें कला प्रतिष्ठित हैं, उस वेद्य पुरुषको जानो और मृत्युरूप व्यथाको तुम मत प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

सर्वनिषेधबोधकश्रुतयः

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥१॥

(केन० १।३)

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ २ ॥

(केन० १।४)

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ३ ॥

(केन० १।५)

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥

(केन० १।६)

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदꣳ श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥

(केन० १।७)

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥

(केन० १।८)

सर्वनिषेधबोधक श्रुतियाँ

न उसमें नेत्र जाता है, न वाणी जाती है, न मन जाता है, अपनी बुद्धिसे हम नहीं जानते, विशेषरूपसे भी हम नहीं जानते, चाहे जिस प्रकार हम सिखावें, यह जाने हुएसे अन्य है और न जाने हुएसे भी अन्य है, ऐसा हमने पूर्व आचार्योंसे सुना है, जिन्होंने हमको पढ़ाया है ॥१॥

जिसको वाणी नहीं प्रकाशती, जिससे वाणी अपना व्यापार करती है, उसको ही तू ब्रह्म जान, जिसकी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ॥२॥

जिसको मनसे कोई नहीं जानता, जिससे मन जाननेको समर्थ होता है, उसको ही तू ब्रह्म जान, जिसकी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ॥३॥

जो नेत्रोंसे नहीं देखता, जिसके द्वारा नेत्र देखते हैं, उसको ही तू ब्रह्म जान, जिसकी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ॥४॥

जिसको श्रोत्रसे कोई नहीं सुनता, जिससे श्रोत्र सुननेको समर्थ होता है, उसको ही तू ब्रह्म जान, जिसकी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ॥५॥

जो प्राणसे चेष्टा नहीं करता, जिससे प्राण चेष्टा करता है, उसको ही तू ब्रह्म जान, जिसकी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ॥६॥

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥७॥

(केन० २।२)

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥८॥

(केन० २।३)

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥९॥

(केन० २।४)

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥१०॥

(कठ० १।३।१५)

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥११॥

(कठ० २।३।१२-१३)

'मैं ब्रह्मको भली प्रकार जानता हूँ' ऐसा मैं नहीं मानता। 'नहीं जानता हूँ' ऐसा भी मैं नहीं मानता किन्तु जानता ही हूँ, जो हममें-से कोई उसको नहीं जानते हैं, वह इसी प्रकार जानते हैं कि हम नहीं जानते हैं और जानते हैं ॥७॥

जिसको ब्रह्म नहीं जाना हुआ है, उसको वह जाना हुआ है, जिसको ब्रह्म जाना हुआ है, वह ब्रह्मको नहीं जानता। जाननेवालोंको ब्रह्म नहीं जाना हुआ है और नहीं जाननेवालोंको जाना हुआ है ॥८॥

जिसे सर्व बुद्धिकी वृत्तियोंके साक्षीरूपसे ब्रह्म जाननेमें आता है, वह अमृतरूप मोक्षको प्राप्त होता है, समाहित मनसे ज्ञानप्राप्तिका सामर्थ्य प्राप्त करता है और विद्या (उस ज्ञान) से अमृतको पाता है ॥९॥

जो शब्दरहित है, स्पर्शरहित है, रूपरहित है, अव्यय है, रसरहित है, नित्य है और गन्धरहित है, इस अनादि, अनन्त, महत्तत्त्वसे पर और ध्रुवको जानकर मनुष्य मृत्युके मुखसे छूट जाता है ॥१०॥

इसको वाणीसे, मनसे और चक्षुसे नहीं प्राप्त कर सकते। 'है' 'वह है' ऐसा कहते हुए भी नास्तिक इसे कैसे जान सकता है? नहीं जान सकता। 'है' और तत्त्वरूप इन दोनों प्रकारसे उपलब्धव्य—प्राप्त होने योग्य है। जब 'है' रूप जाननेमें आ जाता है तब तत्त्वस्वरूप प्रसन्न होता है, यानी जाननेवालेकी बुद्धिमें प्रकट होता है ॥११॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्ण-
मचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं
तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥१२॥
(मुण्ड० १ । १ । ६)

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥१३॥
(मुण्ड० २ । १ । २)

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥१४॥
(मुण्ड० ३ । १ । ८)

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्य-मव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ १५ ॥

(माण्डू० ७)

वह जो अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, अवर्ण है, चक्षु और श्रोत्ररहित है और हाथ-पैररहित है, उस नित्य, विभु, सर्वगत, अत्यन्त सूक्ष्म, अव्यय और भूतोंके कारणको धीर पुरुष देखते हैं ॥१२॥

अजन्मा, दिव्य, अमूर्त पुरुष, बाहर और भीतर, प्राणरहित, मनरहित, शुद्ध, परम अक्षरसे भी परे है ॥१३॥

चक्षुसे ग्रहण नहीं किया जाता, न वाणीसे, न अन्य इन्द्रियोंसे, न तपसे, न कर्मसे ग्रहण किया जाता है, ज्ञानके प्रसादसे जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब ध्यान करनेसे उस निष्कलको देखता है ॥१४॥

न भीतर प्रज्ञावाला है, न बाहर प्रज्ञावाला है, न दोनों प्रकारकी प्रज्ञावाला है, न प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है, अदृष्ट है, व्यवहार-रहित है, अग्राह्य है, अलक्षण है, अचिन्त्य है, अकथनीय है, एक आत्म-प्रत्ययका सार है, प्रपञ्चसे रहित है, शान्त है, शिव है, अद्वैत है, इसको चौथा मानते हैं, वह आत्मा है, उसे जानना चाहिये ॥१५॥

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यति यत्रान्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥१६॥

(छान्दो० ७।२४।१)

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरꣳ शृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कꣳ शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कं विजानीयात्। येनेदꣳ सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति ॥ १७ ॥

(बृह० २।४।१४)

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन ॥ १८ ॥

(बृह० ३।८।८)

स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्यभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १९ ॥

(बृह० ४।२।४

जहाँ दूसरेको नहीं देखता, दूसरेको नहीं सुनता, दूसरेको नहीं जानता, वह भूमा है; जहाँ दूसरेको देखता है, दूसरेको सुनता है, दूसरेको जानता है, वह अल्प है; जो भूमा ही है, वह अमृत है और जो अल्प है, वह मरा हुआ है। प्रश्न—भगवन्! वह किसमें स्थित है? उत्तर—अपनी महिमामें स्थित है और परमार्थसे महिमामें स्थित नहीं है ॥१६॥

जब द्वैतके समान होता है, तब दूसरा दूसरेको सूँघता है, तब दूसरा दूसरेको देखता है, तब दूसरा दूसरेको सुनता है, तब दूसरा दूसरेको कहता है, तब दूसरा दूसरेको सोचता है, तब दूसरा दूसरेको जानता है और जब इसका सब आत्मा ही हो गया, तब किससे किसको सूँघे, किससे किसको देखे, किससे किसको सुने, किससे किसको कहे, किससे किसको सोचे, किससे किसको जाने, जिससे यह सब जाना जाता है, इसको किससे जाने? अरे जाननेवालेको किससे जाने?॥१७॥

याज्ञवल्क्यने कहा—हे गार्गि! इस अक्षरको ब्राह्मण स्थूलसे भिन्न, अणुसे भिन्न, ह्रस्वसे भिन्न, दीर्घसे भिन्न, लोहित—लालसे भिन्न, स्नेह—चिकनापनसे भिन्न, छायासे भिन्न, अन्धेरेसे भिन्न, वायुसे भिन्न, आकाशसे भिन्न, असङ्ग, रससे भिन्न, गन्धसे भिन्न, नेत्रसे भिन्न, श्रोत्रसे भिन्न, वाणीसे भिन्न, मनसे भिन्न, तेजसे भिन्न, प्राणसे भिन्न, मुखसे भिन्न, मात्रासे भिन्न, अन्तरसे भिन्न, बाहरसे भिन्न कहते हैं, यह किसीको नहीं भोगता, न इसको कोई भोगता है ॥१८॥

याज्ञवल्क्यने कहा—वह यह 'न इति', 'न इति' आत्मा अग्राह्य है, ग्रहण नहीं किया जाता, अशीर्य है, घिसता नहीं है, असङ्ग है, आसक्त नहीं होता, अबद्ध है, व्यथाको नहीं प्राप्त होता, नष्ट नहीं होता, हे जनक! तू अभयको प्राप्त हुआ है ॥१९॥

मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥२०॥
(बृह० ४।४।१९)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दमेतज्जीवस्य यज्ज्ञात्वा मुच्यते बुधः ॥२१॥
(ब्रह्म)

यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्र नाग्निर्दहति यत्र न मृत्युर्प्रविशति यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः ॥ २२ ॥ (बृहज्जाबाल०)

नैव चिन्त्यं न चाचिन्त्यमचिन्त्यं चिन्त्यमेव च ।
पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ १ ॥
स्वरेण संधयेद्योगमस्वरं भावयेत्परम् ।
अस्वरेण हि भावेन भावो नाभाव इष्यते ॥ २ ॥
तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम् ॥ ३ ॥
निर्विकल्पमनन्तं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम् ।
अप्रमेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च परमं शिवम् ॥ ४ ॥
न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च शासनम् ।
न मुमुक्षा न मुक्तिश्च इत्येषा परमार्थता ॥ ५ ॥२३॥
(ब्रह्मबिन्दु)

संस्कृत मनसे देखना चाहिये। यहाँ भेद कुछ नहीं है, वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है जो यहाँ भेदके समान देखता है ॥२०॥

जिसको न प्राप्त होकर मनसहित वाणी लौट आती है, वह जीवका आनन्द है, जिसको जानकर विद्वान् मुक्त हो जाता है ॥२१॥

जहाँ सूर्य नहीं तपता, जहाँ वायु नहीं बहता, जहाँ चन्द्रमा नहीं भासता, जहाँ नक्षत्र नहीं भासते, जहाँ अग्नि नहीं जलता, जहाँ मृत्यु प्रवेश नहीं करता, जहाँ दुःख प्रवेश नहीं करते, सदानन्द, परमानन्द, शान्त, शाश्वत, सदाशिव, ब्रह्मादिसे वन्दित, वही योगियोंका ध्येय परं पद है जिसको प्राप्त होकर योगी लौटते नहीं हैं ॥२२॥

न चिन्त्य है, न अचिन्त्य है, अचिन्त्य और चिन्त्य भी है, जब पक्षपातसे निर्मुक्त हो जाता है तब ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ स्वरसे योगका अनुसन्धान करे, पर स्वरहीनकी भावना करे, अस्वररूप भावसे ही भाव और अभाव इष्ट नहीं है ॥ २ ॥ वह ब्रह्म निष्कल, निर्विकल्प और निरञ्जन है, वह ही ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा जानकर निश्चय ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ निर्विकल्प, अनन्त, हेतुदृष्टान्तसे रहित, अप्रमेय, अनाद्य, परमशिवको जानकर ॥ ४ ॥ न निरोध—नाश है, न उत्पत्ति है, न बन्ध है, न शासन है, न मुमुक्षा है, न मुक्ति है, यह ही परमार्थता है ॥५॥२३॥

अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे ।
अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे ॥ १ ॥
मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव ।
भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ २ ॥
द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह ।
दर्शनप्रथमाभासमात्मानं केवलं भज ॥३ ॥
संशान्तसर्वसङ्कल्पा या शिलावदवस्थितिः ।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥ ४ ॥२४॥
(मैत्रेय्युपनिषद्)

षड्विकारविहीनोऽस्मि षट्कोशरहितोऽस्म्यहम् ।
अरिषड्वर्गमुक्तोऽस्मि अन्तरादन्तरोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥
देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बरसुखोऽस्म्यहम् ।
नास्ति नास्ति विमुक्तोऽस्मि नकाररहितोऽस्म्यहम् ।२।
सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि चिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम् ।
कालत्रयविमुक्तोऽस्मि कामादिरहितोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥
कायिकादिविमुक्तोऽस्मि निर्गुणः केवलोऽस्म्यहम् ।
मुक्तिहीनोऽस्मि मुक्तोऽस्मि मोक्षहीनोऽस्म्यहं सदा ॥४॥
सत्यासत्यविहीनोऽस्मि सन्मात्रान्नास्म्यहं सदा ।
गन्तव्यदेशहीनोऽस्मि गमनादिविवर्जितः ॥ ५ ॥
सर्वदा समरूपोऽस्मि शान्तोऽस्मि पुरुषोत्तमः ।
एवं स्वानुभवो यस्य सोऽहमस्मि न संशयः ॥६॥२५॥
(मैत्रेय्युपनिषद्)

समुद्रमें पूर्ण कुम्भके समान भीतर पूर्ण है और बाहर पूर्ण है, आकाशमें शून्य कुम्भके समान भीतर शून्य है और बाहर शून्य है॥ १॥ ग्राह्यभावरूप मत हो, ग्राहकरूप भी मत हो, सम्पूर्ण भावनाओंको छोड़कर, जो शेष रहे, उसमें लीन हो जा॥ २॥ द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनोंको वासनासहित त्यागकर दर्शनके प्रथम आभासरूप केवल आत्मा-को भज॥ ३॥ सर्व-सङ्कल्पोंके शान्त होनेपर, जाग्रत् और निद्रासे रहित जो शिलाके समान स्थिति है, वही परास्वरूप स्थिति है॥ ४॥ २४॥

मैं छः विकारोंसे रहित हूँ, छः कोशोंसे रहित हूँ, छः शत्रुवर्गसे मुक्त हूँ, भीतरसे भीतर हूँ॥ १॥ देशकालसे मुक्त हूँ, दिशावस्त्रवाला सुख हूँ, 'नहीं है' 'नहीं है' से मुक्त हूँ, नकारसे रहित हूँ॥ २॥ सर्व-प्रकाशरूप हूँ, चिन्मात्र ज्योति हूँ, तीनों कालसे मुक्त हूँ, कामादिसे रहित हूँ॥ ३॥ शरीरादिसे रहित हूँ, केवल निर्गुण हूँ। मुक्तिसे हीन हूँ, मुक्त हूँ, सदा मोक्षहीन हूँ॥ ४॥ सत्य-असत्यसे रहित हूँ, सन्मात्रसे मैं सदा नहीं हूँ, गन्तव्य देशसे रहित हूँ, गमनादिसे वर्जित हूँ॥ ५॥ मैं सर्वदा समरूप हूँ, शान्त पुरुषोत्तम हूँ, इसप्रकार जिसका अनुभव है, वह 'सोऽहम्' (वह मैं) ही है, इसमें संशय नहीं है॥ ६॥ २५॥

आत्मज्ञानफलबोधकश्रुतयः

अश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात् प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंभवामि ।१।

(छान्दो० ८ । १३ । १)

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ २ ॥

(मुण्ड० ३ । २ । ८)

तस्य पुत्रादायमुपयन्ति सुहृदः
साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम् ॥ ३ ॥

विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः परागताः ।
न तत्र दक्षिणायन्ति नाविद्वांसस्तपस्विनः ॥ ४ ॥

(शत० ब्राह्म० १० । ५ । ४ । १६)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ५ ॥

(मुण्ड० २ । २ । ८)

सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मान-मनुविद्य विजानाति ॥ ६ ॥ (छान्दो० ८ । ७ । १)

आत्मज्ञानफलबोधक श्रुतियाँ

जैसे घोड़ा अपने बालोंको झाड़कर निर्मल हो जाता है, इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानसे धर्माधर्मरूप पापोंको निकालकर तथा जैसे राहुग्रस्त चन्द्र राहुके मुखमेंसे निकलकर प्रकाशमान हो जाता है, इसी प्रकार सर्व अनर्थोंके आश्रयरूप शरीरको त्यागकर यहाँ यानी इसी शरीरमें ध्यानसे कृतकृत्य होकर अकृत यानी नित्य ब्रह्मलोकको अर्थात् प्रत्यक्-रूपसे ब्रह्मको प्राप्त करता हूँ ॥ १ ॥

जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ नामरूपको छोड़कर समुद्रमें मिलकर अस्त हो जाती हैं इसी प्रकार अविद्याकृत नामरूपसे विमुक्त होकर विद्वान् परसे पर दिव्य पुरुषको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

उसके यानी मृत विद्वान्के पुत्र धन ले लेते हैं, सुहृद् पुण्यकर्म ले लेते हैं और शत्रु पापकर्म ले लेते हैं ॥ ३ ॥

विद्यासे उस ब्रह्मलोकमें आरूढ होते हैं, जहाँ कामनाएँ निवृत्त हो जाती हैं, वहाँ कर्म करनेवाले नहीं जाते और अविद्वान् तपस्वी भी नहीं जाते ॥ ४ ॥

कार्य-कारणरूप ब्रह्मके देखनेपर हृदयकी रागादि गाँठें टूट जाती हैं, सर्व संशय निवृत्त हो जाते हैं और उसके कर्म क्षय हो जाते हैं ॥५॥

सब लोकोंको प्राप्त करता है, सब कामनाओंको प्राप्त करता है, जो उस आत्माको शोधकर जानता है ॥ ६ ॥

एष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दते ॥ ७ ॥

(छान्दो० ८। ५। ३)

यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवं-विदि पापं कर्म न श्लिष्यते ॥ ८ ॥

(छान्दो० ४। १४। ३)

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳहास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते ॥ ९ ॥ (छान्दो० ५। २४। ३)

अथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति ॥ १० ॥ (बृह० ४। ४। ६)

एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ॥ ११ ॥

(प्रश्न० ६। ५)

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ १२ ॥

(ईश० ७)

एवमेष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति-रूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः ॥ १३ ॥

(छान्दो० ८। १२। ३)

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १४ ॥

(कठ० २। १। १५)

जो आत्माको ब्रह्मचर्यसे प्राप्त करता है, उसके आत्माका नाश नहीं होता ॥ ७ ॥

जैसे कमलके पत्तेमें जल नहीं लगता, इसी प्रकार ज्ञानीको पाप नहीं छूते ॥ ८ ॥

जैसे तृणका अग्रभाग अग्निमें डालनेसे जल जाता है, इसी प्रकार इसके सब पाप जल जाते हैं ॥ ९ ॥

(काम ही संसारका मूल है, कामनावाला ही संसारको पाता है) जिसको कामना नहीं है, जो कामरहित है, निष्काम है, आप्त-काम है, आत्मकाम है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते किन्तु (वह) ब्रह्म होकर ब्रह्मको ही प्राप्त होता है ॥ १० ॥

स्वरूपभूत इस पुरुषकी पुरुषाभिमुखी सोलह कलाएँ पुरुषको प्राप्त होकर पुरुषमें अस्त हो जाती हैं ॥ ११ ॥

एकत्व देखनेवालेको मोह कहाँ और शोक कहाँ ॥ १२ ॥

इस प्रकार यह जीव शरीरमेंसे समुत्थान करके अर्थात् देहात्मभाव-को त्यागकर परंज्योति ब्रह्मका साक्षात्कार करके उसी अपने आत्मरूपको प्राप्त होता है, वह उत्तम पुरुष है ॥ १३ ॥

जैसे शुद्ध जल शुद्ध जलमें डालनेसे वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतम ! विज्ञानवाले मुनिका आत्मा हो जाता है ॥ १४ ॥

अथ य इहाऽऽत्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान् कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ १५ ॥

(छान्दो० ८।१।६)

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे
विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥१६॥

(श्वेता० १।११)

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं
तेजोमयं भ्राजते तत्सुधातम्।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥१७॥

(श्वेता० २।१४)

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१८॥

(श्वेता० २।१५)
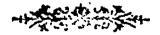
इस लोकमेंसे जो आत्माको जानकर जाते हैं और जो सत्य कामोंको जानकर जाते हैं, उनका सब लोकोंमें कामचार होता है ॥ १५ ॥

परमात्मादेवको जानकर सर्व बन्धनोंका नाश हो जाता है, क्लेशोंके क्षीण हो जानेसे जन्म-मृत्युका अभाव हो जाता है, इसका ध्यान करनेसे तीनों देहोंका भेदन हो जाता है और केवल आप्तकाम विश्वके ऐश्वर्यको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

जैसे मृत्तिकासे लिप्त हुआ बिम्ब उस शोधनके पीछे तेजोमय हो चमकता है, इसी प्रकार आत्मतत्त्वको साक्षात्कार करके देही एक, कृतार्थ और वीतशोक हो जाता है ॥ १७ ॥

जब मुक्तपुरुष दीपकके समान आत्मतत्त्वरूपसे ब्रह्मतत्त्वको देखता है, तब अज, ध्रुव, सब तत्त्वोंसे शुद्ध देवको जानकर सब पाशोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १८ ॥

विविधश्रुतयः

अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ॥१॥ (बृह० २।४।१०)

अशरीरꣳ शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २ ॥
(कठ० २।२१)

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ३ ॥
(मुण्ड० २।२।८)

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥ ४ ॥
(तैत्ति० २।९)

अनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वे देवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥ ५ ॥ (बृह० ३।१।९)

न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न ··· विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः॥६॥
(बृह० ३।४।२)

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ ७ ॥
(बृह० ४।४।१२)

अहिनिर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैवमेवेदꣳ शरीरꣳ शेते । अथायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव ८
(बृह० ४।४।७)

विविध श्रुतियाँ

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वन्, अङ्गिरस ये उस महान् सत्य ब्रह्मके श्वासमात्र हैं ॥१॥

शरीरोंमें अशरीर, अनित्योंमें नित्य, महान् और विभु आत्माको जानकर विद्वान् शोच नहीं करता ॥२॥

उस कारण और कार्यरूपको देखनेपर इसके सब कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥३॥

ब्रह्मका आनन्दस्वरूप जाननेवाला किसीसे भय नहीं करता ॥४॥

मन वृत्ति-भेदसे अनन्त है, यह प्रसिद्ध है, विश्वदेव भी अनन्त हैं, यह प्रसिद्ध है, इसलिये वह अनन्त लोकोंको जीतता है ॥५॥

दृष्टिके द्रष्टाको न देखे और बुद्धिकी वृत्तिके ज्ञाताको तू जान नहीं सकता ॥६॥

'वह स्वयंप्रकाश आत्मा' मैं हूँ, ऐसे जो पुरुष आत्माको जान जाय, तो किस फलको चाहता हुआ और किसके प्रेमके लिये शरीरके पीछे तपे ॥७॥

सर्पकी केंचुली बाँबीमें डाली हुई मरी पड़ी रहती है, इसी प्रकार विद्वान्ने जिसमेंसे अभिमान त्याग दिया है, वह यह शरीर सोता है और यह देहस्थ आत्मा शरीररहित है, मरणरहित है। प्राण ब्रह्म ही है और वह तेज ही है ॥८॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ ९ ॥
(श्वेता० ६ । ८)

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥१०॥
(श्वेता० ३ । १९)

तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये ॥११॥
(छान्दो० ६ । १४ । २)

असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः ॥१२॥ (तैत्ति० २ । ६)

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते । अथ सोऽभयं गतो भवति । यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति ॥ १३ ॥ (तैत्ति० २ । ७)

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाꣳश्च पूरुषः । पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥१४॥
(छान्दो० ३ । १२ । ६)

उसका कार्य शरीर और इन्द्रियाँ नहीं हैं, इसके समान और उससे अधिक कोई नहीं है, इसकी पराशक्ति अनेक प्रकारकी सुननेमें आती है, ज्ञानक्रिया और बलक्रिया स्वाभाविक है ॥६॥

उसके हाथ नहीं है तो भी सर्वग्राही है, पैर नहीं है तो भी दूरगामी है, नेत्ररहित है तो भी देखता है और कर्णरहित है तो भी सुनता है, वह वेदनीय वस्तु जानता है परन्तु उसका जाननेवाला नहीं है, इसको प्रथम पुरुष पूर्ण और महान् कहते हैं ॥१०॥

जबतक मोक्ष नहीं पाता, तबतक ही इस आत्मनिष्ठ पुरुषको विलम्ब है; देहपात हुए पीछे वह विद्वान् पुरुष ब्रह्म हो जाता है। अर्थात् विदेह-कैवल्यका अनुभव करता है ॥११॥

जो ब्रह्मको असत् जानता है, वह असत् हो जाता है और जो ब्रह्मको सत् जानता है, तो उसको ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूपसे विद्यमान जानते हैं ॥१२॥

जब यह साधक अदृश्य, अशरीर, अनिर्वचनीय, अनाधार इस ब्रह्ममें अभय और प्रतिष्ठा यानी आत्मको प्राप्त होता है, तब वह अभय प्राप्त करता है। जब यह साधक इस ब्रह्ममें थोड़ा भी भेद देखता है, तब उसको भय होता है ॥१३॥

इतनी इसकी महिमा है, इस महिमासे पुरुष बड़ा है, ये सब भूत इसके पाद हैं और तीन पाद स्वर्गमें अमृत हैं ॥१४॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥१५॥
(कठ० २।५।५)

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि
त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि
त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥१६॥
(श्वेता० ४।३)

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥१७॥
(कठ० १।३।१)

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥१८॥
(कठ० १।२।१२)

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥१९॥
(मुण्ड० ३।१।२)

कोई भी मर्त्य प्राणसे अथवा अपानसे नहीं जीता, किन्तु ये दोनों जिसमें आश्रित हैं, इस दूसरेसे ही जीते हैं ॥१५॥

तू स्त्री है, तू पुरुष है, तू कुमार है, तू कुमारी है, तू वृद्ध होकर लकड़ी लेकर चलता है, तू उत्पन्न हुआ है और सर्व दिशाओंमें मुखवाला है ॥१६॥

अवश्य होनेवाले कर्मफलको भोगते हुए सुकृतके कार्यरूप देहके श्रेष्ठ हृदयमें जो आकाशरूप गुहा है, इसमें प्रवेश किये हुए छाया और धूपके समान परस्पर-विरुद्ध स्वभाववाले, इन दोनोंको ब्रह्मवेत्ता, पञ्चाग्निके उपासक और नाचिकेत अग्निके चयन करनेवाले जानते हैं ॥१७॥

दुःखसे दीखनेमें आवे ऐसे गूढ़—मायामें प्रवेश किये हुए, गुहारूप बुद्धिमें स्थित, गह्वर यानी अनेक अनर्थसे व्याप्त देहमें रहे हुए, अध्यात्म-योगसे यानी विषयोंमेंसे चित्तको हटाकर और आत्मामें लगाकर पुराण देवको जानकर धीर पुरुष हर्ष-शोकको त्यागते हैं ॥१८॥

समान यानी एक ही वृक्षमें अर्थात् छेदनयोग्य शरीरमें निमग्न हुआ जीव दीनभावसे मोहित होकर शोक करता है, जब अनेक योगमार्गोंसे सेवन किये हुए अन्य ईशको और उसकी महिमाको जानता है, तब शोकरहित होता है ॥१९॥

यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कम् ॥२०॥

(छान्दो० ४ । १० । ५)

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनꣳ हि तत् ॥२१॥

(बृह० ४ । ४ । २१)

अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यम् ॥२२॥

(छान्दो० ८ । १ । १)

तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम् ॥२३॥

(बृह० १ । ४ । १०)

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥२४॥

(श्वेता० २ । १२)

अन्नेन सोम्य शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ ॥२५॥

(छान्दो० ६ । ८ । ४)

वस्तुतः जो कं है, वही खं है और जो खं है, वही कं है। कं नाम सुखका है और खं नाम आकाशका है ॥२०॥

धीमान् उसको जानकर ही प्रज्ञा करे, बहुत शब्दोंका ध्यान न करे क्योंकि वह वाणीको श्रम देनेवाला है ॥२१॥

अब इस ब्रह्मपुर—शरीरमें जो अल्पहृदय कमलरूप घर है, उसमें अल्प अन्तराकाश—ब्रह्म है, इसके जो अन्दर है, इसको खोजना चाहिये, उसीका विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥२२॥

उन देवोंमें जिसने-जिसने प्रत्यक् ब्रह्मको जान लिया, वही ब्रह्म हो गया, इसी प्रकार ऋषियोंमें और इसी प्रकार मनुष्योंमें ॥२३॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पञ्चात्मक भूत-समुदायसे बने हुए योगगुणमें प्रवृत्त हो योगसे तेजोमय देहप्राप्त योगीको रोग, जरा और मृत्यु नहीं है ॥२४॥

हे सोम्य ! अन्नरूप कार्यसे जलरूप मूल खोज, हे सोम्य ! जलरूप कार्यसे तेजरूप मूल खोज और हे सोम्य ! तेजरूप कार्यसे सद्रूप मूल खोज ॥२५॥

तद्यथा श्रेष्ठी स्वैर्भुङ्क्ते यथा वा स्वाः श्रेष्ठिनं भुञ्जन्त्येवमेवैष प्रज्ञात्मैतैरात्मभिर्भुङ्क्ते एवमेवैत आत्मान एतमात्मानं भुञ्जन्ति ॥२६॥

(कौ० ब्रा० ४।२०)

अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव ँ स देवानाम् ॥२७॥

(बृह० १।४।१०)

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे
विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥२८॥

(श्वेता० १। ११)

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू-
स्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥२९॥

(कठ० २।१।१)

रेतो वै प्रजापतिः प्रजायते ह प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥३०॥

(बृह० ६।१।६)

जैसे सेठ अपने मनुष्योंके साथ उपभोग करता है अथवा जैसे वे लोग अपने उपभोगके लिये सेठका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार यह प्रज्ञात्मा इन आत्माओंद्वारा उपभोग करता है और इसी प्रकार वे आत्मा अपने भोगके लिये इस प्रज्ञात्माका आश्रय लेते हैं ॥२६॥

जो कोई अज्ञानी आत्मासे अन्य देवताकी उपासना करता है, वह अन्य है, मैं अन्य हूँ, ऐसा माननेवाला तत्त्व नहीं जानता, वह देवताओं-का पशु है ॥२७॥

देवके ज्ञानसे अविद्यारूप सर्व पाश क्षय हो जाते हैं, अविद्यादि क्लेश क्षीण होनेसे जन्म-मरणादि दुःखोंका कारण नष्ट हो जाता है, उस परमेश्वरके निरन्तर ध्यानसे तीनों शरीरोंका भेदन हो जाता है और विश्वका ऐश्वर्यरूप फल प्राप्त होता है, वह अनुभवी उसको त्याग-कर केवल पूर्णानन्द अद्वितीय ब्रह्मरूप हो जाता है ॥२८॥

स्वयम्भूने छिद्रोपलक्षित इन्द्रियोंको पराक् यानी विषय ग्रहण करनेवाली बनाया है, इसलिये द्रष्टा बाहरके पदार्थोंको देखता है, अन्तरात्माको नहीं देखता, कोई एक विवेकी, जिसकी नेत्रादि इन्द्रियाँ विषयोंसे व्यावृत्त हुई हैं, अमृतत्वको चाहता हुआ अन्तरात्माको देखता है ॥२९॥

रेत यानी वीर्य प्रजापति है, जो ऐसा जानता है, वह प्रजा और पशुसे सम्पन्न होता है ॥३०॥

तस्माद्ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद्बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः ॥३१॥

(बृह० ३।५।१)

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥३२॥

(कठ० १।२।७)

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद ॥३३॥

(बृह० ४।५।७)

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः ॥३४॥ (बृह० ४।४।५)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥३५॥

(श्वेता० ३।८)

कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव ॥३६॥

(बृह० १।५।३)

इसलिये ब्रह्मवेत्ता पण्डित भाव यानी आत्मविज्ञानको निःशेष जानकर बाह्यरूप यानी ज्ञान-बाल-भावसे रहनेकी इच्छा करे, बाल्य और पाण्डित्यको निःशेष जानकर पीछे मुनि—मननशील होवे, अमौन और मौनको निःशेष जानकर ब्रह्मवेत्ता कृतकृत्य हो जाता है ॥२१॥

जो आत्मा सुननेको भी बहुतोंको नहीं मिलता, बहुतसे सुनकर भी आत्माको नहीं जानते, इसका वक्ता आश्चर्यरूप है, कोई विरला ही होता है, इसी प्रकार सुनकर समझनेवाला भी कोई एक होता है क्योंकि इसका ज्ञाता आश्चर्य है, कुशल आचार्यसे किसी एकने ही उपदेश पाया है ॥२२॥

जो आत्मासे अन्य ब्रह्मको जानता है, उसको ब्रह्म श्रेष्ठ मार्गसे भ्रष्ट करता है ॥२३॥

वह यह आत्मा ब्रह्म है, विज्ञानमय है, मनोमय है, प्राणमय है, चक्षुमय है और श्रोत्रमय है ॥२४॥

यह आत्मा जो महान् प्रकाशरूप और अज्ञानसे पर है, इसको मैं जानता हूँ, इसको जानकर ही अधिकारी मृत्युको लाँघता है, परम-पद-प्राप्तिके लिये दूसरा मार्ग नहीं है ॥२५॥

काम, सङ्कल्प, संशय ज्ञान, आस्तिक्य बुद्धि, अनास्तिक्य बुद्धि, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, प्रज्ञा और भय ये सब मन ही है ॥२६॥

तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तꣳ सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति ॥३७॥

(बृह० ४ । ४ । २)

सैषा भार्गवी वारुणी विद्या । परमे व्योमन्प्रतिष्ठिता । य एवं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान्कीर्त्या ॥३८॥

(तैत्ति० ३ । ६)

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥३९॥

(ऐत० १ । १)

सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥४०॥

(ऐत० ५ । ३)

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद । नाना तु विद्या चाविद्या च । यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥४१॥ (छान्दो० १ । १ । १०)

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति ॥४२॥ (छान्दो० २ । २३ । १)

जीवके उत्क्रमण करनेके पीछे प्राण उत्क्रमण करता है, प्राणके उत्क्रमण करनेके पीछे सब प्राण यानी इन्द्रियाँ उत्क्रमण करती हैं ॥३७॥

वह यह भृगुकी जानी हुई, वरुणकी कही हुई ब्रह्मविद्या है। परमानन्द अद्वैतस्वरूप ब्रह्ममें प्रतिष्ठित है। जो इस प्रकार जानता है, वह परब्रह्ममें स्थित होता है, प्रचुर अन्नवाला होता है, अन्नाद यानी दीप्ताग्निवाला होता है, महान् होता है। प्रजासे, पशुओंसे, ब्रह्मतेजसे और कीर्तिसे महान् होता है ॥३८॥

आत्मा ही यह एक पूर्वमें था। और कुछ भी व्यापारवाला न था। उसने विचार किया कि लोकोंको उत्पन्न करूँ ॥३९॥

हिरण्यगर्भसे लेकर स्थावरोंतक सब प्रज्ञा नेत्रवाला है। प्रज्ञानमें प्रतिष्ठित है। प्रज्ञा नेत्रवाले लोक हैं। प्रज्ञा प्रतिष्ठा है यानी लय-स्थान है। प्रज्ञान ब्रह्म है ॥४०॥

जो इसको जानता है और जो इसको नहीं जानता, वे दोनों ही इस अक्षरसे कर्म करते हैं। विद्या-अविद्या भिन्न-भिन्न हैं। जो कोई विद्यासे, श्रद्धासे और देवतादि-विषयक ज्ञानसे करता है, वही कर्म अधिक वीर्यवाला होता है। यह उस अक्षरका ही उपव्याख्यान है॥४१॥

धर्मके तीन विभाग हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान, यह प्रथम गृहस्थ-धर्म है, दूसरा तप वानप्रस्थका धर्म है, तीसरा ब्रह्मचारी आचार्यकुल-वासी है, जो यावज्जीवन आचार्यकुलमें वास करता है यानी नैष्ठिक ब्रह्मचारीका तीसरा धर्म स्कन्ध है। ये सब पुण्यलोकवाले होते हैं। ब्रह्मनिष्ठ अमृतत्वरूप मोक्षको प्राप्त होता है ॥४२॥

गायत्री वा इदँ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च वाग्वै गायत्री वाग्वा इदँ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥४३॥

(छान्दो० ३।१२।१)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ॥१॥ मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥२॥ एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा एष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ॥३॥ सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भवितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्साऽस्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥४॥४४॥

(छान्दो० ३।१४।१—४)

ये सब जो प्राणीसमूह हैं और जो कुछ है वह गायत्री है, वाणी ही गायत्री है, वाणी ही इन सब प्राणीसमूहको गाती है और रक्षा करती है ॥४३॥

यह सब निश्चय ब्रह्म है, इसीसे सब उत्पन्न होते हैं, इसीमें लय होते हैं और इसीमें चेष्टा करते हैं, इसकी शान्त होकर उपासना करे, क्योंकि पुरुष निश्चयवाला है। जैसा पुरुष इसलोकमें निश्चयवाला होता है, वैसा ही मरनेके बाद होता है। इसलिये शान्त होकर अचल निश्चय करे ॥१॥ मनोमय लिंग-शरीरवाला भारूप यानी चैतन्यस्वरूप है, सत्य संकल्पवाला है, आकाश-शरीरवाला है, सर्व कर्मवाला है, सर्व कामनावाला है, सर्व गन्धवाला है, सर्व रसवाला है, इससे सब जगत् व्याप्त है, यह वाणी यानी शब्दरहित है और आदररहित यानी मानरहित है ॥२॥ यह मेरा आत्मा हृदयके भीतर ब्रीहिसे, यवसे, सरसोंसे, श्यामाक नामक तृणसे अथवा श्यामाकके तण्डुलसे भी सूक्ष्म है, फिर भी यह हृदयके भीतर मेरा आत्मा पृथिवीसे बड़ा है, अन्तरिक्षसे बड़ा है, स्वर्गसे बड़ा है और इन सब लोकोंसे भी बड़ा है ॥३॥ सर्व कर्म करनेवाला है, सर्व कामनावाला है, सर्व गन्धवाला है, सर्व रसवाला है, इससे सब व्याप्त है। यह वाणीरहित और आदररहित है। मेरे हृदयके भीतर यह जो आत्मा है, यह ब्रह्म है। इस उपास्यको, मरनेके पीछे मैं प्राप्त ही हूँ, यह विद्वान्‌का संशयरहित निश्चय है। यह बात शाण्डिल्य ऋषिने कही है ॥४॥४४॥

तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाण-पक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान् ॥१॥ मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषो-ऽमानवः स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ २ ॥ अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिꣳ रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्दक्षिणैति मासाꣳ-स्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥३॥ मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवा-नामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥४॥ तस्मिन्यावत्सम्पातमुषित्वा-ऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायु-र्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति॥५॥ अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्प-तयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥ ६ ॥ तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्ये-रन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाऽथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्ये-रञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥७॥

इन परलोक जानेवालोंमें जो गृहस्थ इस प्रकार पञ्चाग्निविद्याको जानते हैं और जो वानप्रस्थ अमुख्य संन्यासी वनमें श्रद्धापूर्वक तप करते हैं, वे सब अर्चिप अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, अर्चिपसे दिनके अभिमानी देवताको, दिनके अभिमानी देवतासे शुक्ल पक्षके अभिमानी देवताको, शुक्ल पक्षके अभिमानी देवतासे छः मास उत्तरायण-के अभिमानी देवताको, उत्तरायणके अभिमानी देवतासे संवत्सरके अभिमानी देवताको, संवत्सरके अभिमानी देवतासे आदित्यको, आदित्य-से चन्द्रमाको, चन्द्रमासे विद्युत्को प्राप्त होते हैं। वहाँ अमानव पुरुष आता है और उनको ब्रह्मलोकमें ले जाता है, यह देवयान-मार्गोंका निरूपण है ॥ १ ॥ २ ॥ और जो ये ग्राममें गृहस्थ इष्ट, पूर्त और दानकी उपासना करते हैं। अग्निहोत्रादिका नाम इष्ट है और कूप-बावड़ी आदि बनवानेका नाम पूर्त है। वे लोग धूमको प्राप्त होते हैं, धूमसे रात्रिको, रात्रिसे दक्षिणायनको प्राप्त होते हैं। यहाँ भी धूमादिके अभिमानी देवता अर्थ है। ये दक्षिणायन-मार्गवाले संवत्सरको नहीं प्राप्त होते ॥३॥ दक्षिणायन-मासोंसे पितृलोकको, पितृलोकसे आकाशको, आकाशसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं। यह सोम राजा उन देवताओंका अन्न है, इसको देवता भक्षण करते हैं यानी इसका उपभोग करते हैं ॥४॥ वहाँ जबतक पुण्य होता है, रहकर वहाँसे उसी मार्गसे फिर लौटते हैं, जैसे कि इस आकाशको, आकाशसे वायुकी प्राप्ति होती है, वायु होकर धूम होता है, धूम होकर अभ्र होता है, अभ्र होकर मेघ होता है, मेघ होकर बरसता है। वे यहाँ व्रीहि, यव, ओषधि, वनस्पति, तिल अथवा उड़द होते हैं। वहाँसे कठिनाईसे निकलना होता है। जो-जो अन्नको खाता है, जो रेत–वीर्य सींचता है, वह फिर वही हो जाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ उनमें जो शोभन आचरणवाले होते हैं, वे शीघ्र ही शोभनयोनिको प्राप्त होते हैं, जैसे कि ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि, वैश्ययोनि और जो अशुभ आचरणवाले होते हैं, वे निकृष्ट योनियोंको प्राप्त होते हैं, जैसे कि कुत्तेकी योनि, सूकरकी योनि अथवा चाण्डालकी योनि ॥ ७ ॥

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳ स्थानं तेनासौ लोको न संपूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ॥८॥ स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरꣳस्तैरिति ॥९॥ अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥१०॥४५॥

(छान्दो० ५।१०।१-१०)

तस्य ह वा एतस्याऽऽत्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्माऽऽत्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥४६॥

(छान्दो० ५।१८।२)

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥ प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किञ्च द्यौश्चाऽऽदित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥४७॥

(छान्दो० ५।१९।१-२)

और जो इनमेंसे किसी मार्गसे नहीं चलते, वे ये क्षुद्र बारम्बार जन्मनेवाले प्राणी होते हैं, जन्मते और मरते हैं, यह तीसरा स्थान है, इसलिये यह लोक पूर्ण नहीं होता, अतएव इससे डरना चाहिये । इस सम्बन्धमें यह श्लोक है ॥ ८ ॥ सुवर्णका चोर, सुरा पीनेवाला, गुरु-स्त्रीमें गमन करनेवाला, ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला ये चारों पतित होते हैं और इनके साथ आचरण करनेवाला पाँचवाँ भी पतित होता है ॥ ९ ॥ जो इन पाँच अग्नियोंको जानता और उसके अनुसार आचरण करता है उसको पाप नहीं लगता । शुद्ध, पवित्र और पुण्यलोकगामी होता है, जो ऐसे जानता है, जो ऐसे जानता है ॥ १० ॥ ४५ ॥

इस वैश्वानर आत्माका मस्तक सुतेजा है । चक्षु विश्वरूप है, भिन्न-भिन्न मार्गोंमें चलनेवाला प्राण शरीर है, देहका मध्य-भाग आकाश है, वस्ति—मूत्र-स्थान धन यानी अन्न है क्योंकि जलसे अन्न होता है, पृथिवी पाद हैं, छाती वेदि है, लोम कुश हैं, हृदय गार्हपत्य अग्नि है, मन अन्वाहार्य अग्नि है और मुख आहवनीय अग्नि है ॥४६॥

इस अग्निहोत्रमें जो भोजनादि प्रथम आवे, वह होम करने योग्य है, वह जिस प्रथम आहुतिको होमे, उसको 'प्राणाय स्वाहा' कहकर होमे । ऐसा करनेसे प्राण तृप्त हो जाता है, प्राणके तृप्त होनेसे चक्षु तृप्त हो जाता है, चक्षुके तृप्त होनेसे आदित्य तृप्त हो जाता है, आदित्यके तृप्त होनेसे स्वर्ग तृप्त हो जाता है, स्वर्गके तृप्त होनेपर जो कुछ स्वर्ग और आदित्यको वश करके स्थित है, वह तृप्त हो जाता है । उसकी तृप्तिके पीछे प्रजासे, पशुओंसे, खाये-न-खाये अन्नसे, तेजसे और ब्रह्म-तेजसे तृप्त होता है ॥४७॥

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति॥ व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किञ्च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥४८॥

(छान्दो० ५।२०।१, २)

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति॥ अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥४९॥

(छान्दो० ५।२१।१, २)

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति॥ समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥५०॥

(छान्दो० ५।२२।१, २)

इसके अनन्तर वह जिस द्वितीय आहुतिको होमे, उसको 'व्यानाय स्वाहा' कहकर होमे । ऐसा करनेसे व्यानकी तृप्ति होती है । व्यानके तृप्त होनेसे श्रोत्र तृप्त हो जाता है, श्रोत्रके तृप्त होनेसे चन्द्रमा तृप्त हो जाता है । चन्द्रमाके तृप्त होनेसे दिशाएँ तृप्त हो जाती हैं, दिशाओंके तृप्त होनेपर दिशाओंको और चन्द्रमाको वशमें करके जो कुछ स्थित है वह तृप्त हो जाता है । उसकी तृप्तिके पीछे प्रजासे, पशुओंसे, खाये-न-खाये अन्नसे, तेजसे और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥४८॥

इसके अनन्तर वह जिस तृतीय आहुतिको होमे, उसको 'अपानाय स्वाहा' कहकर होमे । ऐसा करनेसे अपान तृप्त होता है, अपानके तृप्त होनेसे वाणी तृप्त होती है, वाणीके तृप्त होनेसे अग्नि तृप्त होती है । अग्निके तृप्त होनेसे पृथ्वी तृप्त होती है, पृथ्वीके तृप्त होनेसे जो कुछ पृथ्वी और अग्निको वशमें करके स्थित है वह तृप्त हो जाता है । उसकी तृप्तिके पीछे प्रजासे, पशुओंसे, खाये-न-खाये अन्नसे, तेजसे और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥४९॥

इसके अनन्तर वह जिस चतुर्थ आहुतिको होमे, उसको 'समानाय स्वाहा' यह कहकर होमे । ऐसा करनेसे समान तृप्त होता है, समानके तृप्त होनेसे मन तृप्त होता है, मनके तृप्त होनेसे पर्जन्य तृप्त होता है, पर्जन्यके तृप्त होनेसे विद्युत् तृप्त होती है, विद्युत्के तृप्त होनेपर जो कुछ विद्युत् और पर्जन्यको वशमें करके स्थित है वह तृप्त हो जाता है । उसकी तृप्तिके पीछे प्रजासे, पशुओंसे, खाये-न-खाये अन्नसे, तेजसे और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है ॥५०॥

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाऽऽकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ५१

(छान्दो० ५।२३।१, २)

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाऽङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत्स्यात् ॥ अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥५२॥ (छान्दो० ५।२४।१, २)

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासत एवꣳ सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥५३॥

(छान्दो० ५।२४।५)

ॐ श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेय आस तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥ १ ॥ स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विꣳशतिवर्षः सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः ॥ २ ॥

इसके अनन्तर वह जिस पञ्चमी आहुतिको होमे, उसको 'उदानाय स्वाहा' यह कहकर होमे। उदानके तृप्त होनेसे त्वचा तृप्त होती है, त्वचाके तृप्त होनेसे वायु तृप्त होता है, वायुके तृप्त होनेसे आकाश तृप्त होता है, आकाशके तृप्त होनेपर जो कुछ वायु और आकाशको वशमें करके स्थित है वह तृप्त हो जाता है। उसकी तृप्तिके पीछे प्रजासे, पशुओंसे, खाये-न-खाये अन्नसे, तेजसे और ब्रह्मतेजसे तृप्त होता है॥२१॥

वह जो वैश्वानर विद्याका न जाननेवाला अग्निहोत्र होमता, वह जैसे अंगारोंको छोड़कर राखमें होमता हो, ऐसा है, और जो विद्वान् इस अग्निहोत्रको होमता है, उसका सब लोकोंमें, सब भूतोंमें और सब शरीरोंमें होमा हुआ हो जाता है॥ २२॥

जैसे इस लोकमें भूखे बालक माताकी उपासना करते हैं कि कब हमको भोजन देगी, इसी प्रकार इस विद्वान्के अग्निहोत्रकी सर्व भूत उपासना करते हैं कि कब यह भोजन करेगा और हम तृप्त होंगे॥२३॥

श्वेतकेतु नामक अरुणका पुत्र था। उसके पिताने उससे कहा—'हे श्वेतकेतो! गुरुके पास जाकर अध्ययन करनेके लिये ब्रह्मचर्यपूर्वक वास कर, हमारे कुलमें ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई बिना पढ़ा हुआ ब्रह्मबन्धुके समान हुआ हो। (ब्राह्मण होकर ब्राह्मणका वृत्त न करता हो, उसका नाम ब्रह्मबन्धु है)॥ १॥ वह बारह वर्ष आचार्यके पास जाकर रहा और जब वह चौबीस वर्षका हुआ, तब सब वेदोंको पढ़कर महामना यानी बड़ा अभिमानी हो गया और अपनेको अनुवचन करनेवाला मानने लगा। विनयसे रहित होकर अपने घरपर आकर खड़ा हो गया। ऐसा देखकर पिताने कहा—'हे सौम्य! तू महामानी पण्डिताईका मान करनेवाला और स्तब्ध है, क्या तूने उस आदेशको अपने आचार्यसे पूछा था॥२॥

येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ॥ ३ ॥ यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥४॥ यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥५॥ यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳ सोम्य स आदेशो भवतीति ॥६॥ न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवाꣳस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥७ ॥ ५४॥

(छान्दो० ६ । १ । १—७)

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपाꣳ रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः ॥ ५५ ॥

(छान्दो० ६ । ४ । ६)

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माꣳसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥१॥ आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ॥२॥

जिससे बिना सुना हुआ, सुना हुआ हो जाता है, बिना जाना हुआ, जाना हुआ हो जाता है और बिना निश्चय किया हुआ, निश्चित हो जाता है। श्वेतकेतुने कहा—'भगवन्! वह कैसा आदेश है?' ॥३॥ पिताने कहा—'हे सोम्य! जैसे एक मृत्तिकाके पिण्डसे सर्व मृत्तिकामय जान लिया जाता है' अर्थात् विकार कहनेमात्र यानी नाममात्र है, मृत्तिका ही सत्य है ॥ ४ ॥ हे सोम्य! जैसे एक सुवर्णके पिण्डसे सर्व सुवर्णमय जान लिया जाता है अर्थात् विकार कहनेमात्र यानी नाममात्र है, सुवर्ण ही सत्य है ॥ ५ ॥ हे सोम्य! जैसे एक नख-काटनेकी निहन्नीसे सर्व लोह-मय जान लिया जाता है। अर्थात् विकार कहनेमात्र यानी नाममात्र है, काला लोहा ही सत्य है, हे सोम्य! ऐसा ही वह आदेश है ॥६॥ श्वेतकेतुने कहा 'मेरे गुरु इस प्रकारकी वस्तुको नहीं जानते हैं, यदि वे जानते होते तो मुझसे क्यों न कहते?' हे भगवन्! आप ही मुझसे उसको कहिये। पिताने कहा—'हे सोम्य! अच्छा' ॥७॥२४॥

जो लालके समान जाननेमें आया वह तेजका रूप है, इस प्रकार वह जानने लगा, जो शुक्ल-सा रूप जाननेमें आया वह जलका रूप है, ऐसा वह जानने लगा और काला-सा जाननेमें आया वह पृथिवीका रूप है, इस प्रकार वह जानने लगा ॥२५॥

खाये हुए अन्नके तीन भाग हो जाते हैं, स्थूलतम धातु विष्ठा हो जाता है, मध्यम धातु मांस हो जाता है और सूक्ष्मतम धातु मन हो जाता है ॥ १ ॥ पीया हुआ जल तीन प्रकारका हो जाता है, उनमेंका स्थूलतम धातु मूत्र हो जाता है। मध्यम धातु रक्त हो जाता है और सूक्ष्मतम धातु प्राण हो जाता है ॥ २ ॥

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातु-स्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥३॥ अन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति ॥४॥५६॥ (छान्दो० ६।५)

पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयम-कार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनाऽऽत्मान-मन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥१॥ अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रति-गृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ॥२॥ स यथा तत्र नादाह्येतै-तदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥३॥५७॥

(छान्दो० ६।१६।१-३)

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥५८॥ (छान्दो० ७।२२।१)

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥५९॥ (छान्दो० ७।२३।१)

खाया हुआ घी आदि तेज तीन प्रकारका हो जाता है। उसका जो स्थूलतम धातु है, वह अस्थि हो जाता है। जो मध्यम धातु है, वह मज्जा हो जाता है और जो सूक्ष्मतम धातु है, वह वाणी हो जाती है ॥ ३ ॥ हे सोम्य ! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजोमयी है ॥ ४ ॥ ८६ ॥

हे सोम्य ! राजाके पुरुष हाथ पकड़कर पुरुषको लाते हैं। तब राजा पूछता है कि इसने क्या किया है, तो कहते हैं कि धन हरण किया है। राजा चोरसे पूछता है कि क्या तूने चोरी की है ? वह कहता है कि नहीं। तब राजा कहता है कि लोहा तपाओ। यदि वह उसका कर्त्ता होता है तो अपनेको झूठा कहता है। वह झूठसे सम्बन्धवाला अपनेको झूठसे बचानेके लिये तपते हुए लोहेको पकड़ता है, जल जाता है और मारा जाता है ॥ १ ॥ यदि वह उसका अकर्ता होता है, तो आत्माको सत्य करता है, वह सत्यसे सम्बन्धवाला सत्यसे अपने बचानेके लिये तप्त लोहेको पकड़ता है, वह जलता नहीं है और छूट जाता है ॥ २ ॥ वह जैसे वहाँ न जले, इसी प्रकार सत् ब्रह्मके सम्बन्धवाला विद्वान् है, यह सब आत्मरूप है, वह सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतो ! वह तू है। इस प्रकार पिताके कहनेसे श्वेतकेतु जान गया कि मैं ही ब्रह्म हूँ, जान गया कि मैं ही ब्रह्म हूँ ॥३॥८७॥

सनत्कुमार—जब कि सुख प्राप्त होता है तब ही करता है, सुख न पाकर नहीं करता, सुख पाकर ही करता है, सुखको ही जानना चाहिये। नारद—भगवन् ! सुख बताइये ? ॥८८॥

सनत्कुमार—जो भूमा है वह सुख है, अल्पमें सुख नहीं है, भूमा ही सुख है, भूमा ही जानना चाहिये। नारद—भगवन् ! भूमा बतलाइये ? ॥८९॥

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥१॥ गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति ॥२॥६०॥

(छान्दो० ७। २४)

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳ सर्वमिति ॥१॥ अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति। अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥ ६१ ॥

(छान्दो० ७। २५)

सनत्कुमार—जहाँ अन्यको नहीं देखता, अन्यको नहीं सुनता, अन्यको नहीं जानता, वह भूमा है और जहाँ अन्यको देखता है, अन्यको सुनता है, अन्यको जानता है, वह अल्प है, जो भूमा है, वह अमृत है और जो अल्प है वह मरणशील है। नारद—भगवन्! वह किसमें स्थित है? सनत्कुमार—अपनी महिमामें स्थित है अथवा महिमामें स्थित नहीं है ॥१॥ इस लोकमें गाय-घोड़े महिमा कहलाते हैं, हाथी, सोना, दास, भार्या, क्षेत्र, स्थान, महिमा कहलाते हैं, मैं ऐसा नहीं कहता कि अपने सिवा अन्य महिमामें स्थित है किन्तु ऐसा कहता हूँ कि अन्य ही अन्यकी महिमामें स्थित होता है, भूमाके सिवा दूसरा है नहीं, इसलिये किसीमें स्थित नहीं है ॥२॥६०॥

वह ही नीचे है, वह ही ऊपर है, वह ही पीछे है, वह ही आगे है, वह ही दक्षिणमें है, वह ही उत्तरमें है, वह ही यह सब है। अब अहङ्कारका आदेश है, मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही पीछे हूँ, मैं ही आगे हूँ, मैं ही दक्षिणमें हूँ, मैं ही उत्तरमें हूँ, मैं ही यह सब हूँ ॥१॥ अब आत्माका आदेश है, आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दक्षिणमें है, आत्मा ही उत्तरमें है, आत्मा ही यह सब है, जो इस प्रकार देखता है, इस प्रकार मानता है, इस प्रकार जानता है, वह आत्मामें रति करता है, आत्मामें क्रीडा करता है, आत्माको ही मिथुन जानता है, आत्मामें ही आनन्द मानता है, वह स्वराट् हो जाता है, उसका सब लोकोंमें कामचार होता है, जो ऐसा नहीं जानते उनका अन्य राजा होता है, उनका सब लोकोंमें कामचार नहीं होता ॥२॥६१॥

न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताᳪ सर्वᳪह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा भवति सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विᳪशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥६२॥

(छान्दो० ७ । २६ । २)

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳪ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥६३॥

(छान्दो० ८ । ४ । ३)

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाᳪश्च लोकानाप्नोति सर्वाᳪश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानाति प्रजापतिरुवाच॥६४॥

(छान्दो० ८ । ७ । १)

मघवन्मर्त्यं वा इदᳪ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्याऽऽत्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥६५॥

(छान्दो० ८ । १२ । १)

ऐसा विद्वान् मृत्यु नहीं देखता, न रोग देखता है, न दुःख देखता है, सब देखता है, सबको सब ओरसे प्राप्त होता है, वह एक प्रकारका हो जाता है, तीन प्रकारका हो जाता है, पाँच प्रकारका हो जाता है, सात प्रकारका, नव प्रकारका और ग्यारह प्रकारका हो जाता है, सौ, दश, एक, हजार और बीस हो जाता है, अर्थात् सृष्टिकालसे पूर्व एक होता है। सृष्टिकालमें अनेक हो जाता है और प्रलयकालमें फिर एक हो जाता है, आहार शुद्ध होनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, अन्तःकरण शुद्ध होनेसे नित्य स्मृति हो जाती है और स्मृति प्राप्त होनेसे सब ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं॥६२॥

वे जो इस ब्रह्मलोकको ब्रह्मचर्यसे स्वसंवेद्यरूपसे प्राप्त करते हैं, उनका ही यह ब्रह्मलोक है। उनका सब लोकोंमें कामचार होता है॥६३॥

प्रजापतिने कहा—जो आत्मा पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, भूखरहित, प्यासरहित, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प है, उसे खोजना चाहिये, जानना चाहिये। जो उसको खोजकर जान लेता है, वह सब लोकोंको और सब कामनाओंको प्राप्त होता है॥६४॥

हे इन्द्र! यह मरणशील शरीर मृत्युसे ग्रस्त है। वह शरीर उस अमृत शरीररहित आत्माका अधिष्ठान है यानी भोगका स्थान है, सशरीर निश्चय प्रिय-अप्रियसे ग्रस्त है, सशरीरके होनेपर निश्चय प्रिय-अप्रियका नाश नहीं होता। अशरीर होनेपर निश्चय प्रिय-अप्रिय स्पर्श नहीं करते॥६५॥

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन्रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳस्मरन्निदꣳ शरीरꣳस यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥६६॥

(छान्दो० ८ । १२ । २, ३)

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभवत् । तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवꣳ सूर्यश्चेति । तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदꣳ सर्वं भवति तस्य ह न देवाश्चनाभूत्या ईशते । आत्मा ह्येषाꣳ स भवति । अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवꣳ स देवानाम् । यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान्भुनक्त्येकस्मिन्नेव पशावादीयमानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः ॥६७॥

(बृह० १ । ४ । १०)

वायु, अभ्र, विद्युत् और गर्जन अशरीर हैं। जैसे ये अशरीर वायु आदि भूताकाशसे उत्थान करके परं सूर्यरूप ज्योतिको प्राप्त होकर अपने-अपने रूपको प्राप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार यह शुद्ध हुआ जीव इस शरीरमेंसे अभिमान छोड़कर परं ज्योतिको प्राप्त होकर अपने स्वरूपसे आविर्भाव होता है, वह उत्तम पुरुष है, वह वहाँ—यानी आत्मरूपमें भोग करता हुआ, क्रीडा करता हुआ, स्त्री, यान और जान-पहिचान-वालोंके साथ रमण करता हुआ इस उपभुक्त शरीरका स्मरण नहीं करता। वह जैसे योग्य यानी जुते हुए घोड़े आदि जानवर आचार-में युक्त होते हैं, इसी प्रकार यह इस शरीर और प्राणमें ईश्वरसे नियुक्त होता है ॥६६॥

पूर्वमें यह ब्रह्म ही था, उसने आत्माको जाना कि मैं ब्रह्म हूँ, इसलिये वह सब हो गया। देवताओंमेंसे जिसने-जिसने उसको जाना, वे वह ही हो गये, इसी प्रकार ऋषियोंमें और मनुष्योंमें, उसको ही देखकर ऋषि वामदेव जानने लगा कि मैं ही मनु हुआ और मैं ही सूर्य हुआ। अब भी जो उसको इस प्रकार जानता है कि मैं ब्रह्म हूँ, वह यह सब हो जाता है, उसके सर्वभावको निवृत्त करनेमें देवता भी समर्थ नहीं होते, क्योंकि यह उनका आत्मा ही हो जाता है। और जो अन्य देवताकी उपासना करता है कि मैं अन्य हूँ और वह अन्य है, वह नहीं जानता, इसलिये देवताओंका पशु-जैसा है। जैसे बहुत-से पशु मनुष्यको भोग देते हैं, इसी प्रकार एक-एक मनुष्य देवताओंको भोग देता है। एक पशुके ले जानेसे ही अप्रिय होता है, तो बहुतोंके ले जानेसे क्यों अप्रिय न हो? इसलिये देवताओंको यह प्रिय नहीं होता कि मनुष्य उस ब्रह्मको जाने ॥६७॥

तदेतद्ब्रह्म क्षत्रं विट्शूद्रस्तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माभवद्-ब्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रियेण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रस्तस्मादग्नावेव देवेषु लोकमिच्छन्ते ब्राह्मणे मनुष्ये-ष्वेताभ्याꣳ हि रूपाभ्यां ब्रह्माभवत् । अथ यो ह वा अस्मा-ल्लोकात्स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽननूक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवं-विन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्धास्यान्ततः क्षीयत एवाऽऽत्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयते । अस्माद्ध्येवाऽऽत्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते ॥६८॥ (बृह० १।४।१५)

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च ॥६९॥ (बृह० २।३।१)

स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानाꣳ राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एत आत्मानः समर्पिताः ॥७०॥

(बृह० २।५।१५)

यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानꣳ शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥७१॥ (बृह० ३।७।२२)

वह यह देव ब्रह्म, क्षत्र, विट् और शूद्ररूप होकर अग्निसे देवताओंमें ब्राह्मण हुआ, अग्निरूप देव ब्राह्मणसे मनुष्योंमें ब्राह्मण हुआ, इन्द्रादि देव क्षत्रियोंसे क्षत्रिय हुआ, वसु आदि देव वैश्योंसे वैश्य हुआ और पूपरूप देव शूद्रसे शूद्र हुआ। इसलिये अग्निरूप कर्मसे देवताओंके मध्यमें लोकरूप फलकी इच्छा करते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण मनुष्योंमें भी अग्निरूप कर्मसे लोककी इच्छा करते हैं क्योंकि अग्नि, ब्राह्मण इन दोनों रूपोंसे ही ब्रह्मसाक्षात् होता है और जो इस लोकसे आत्मलोकको न जानकर मरता है, वह आत्मा इस प्रकार न जाननेवालेको नहीं पालता। जैसे विना पढ़ा हुआ वेद और विना किया हुआ कर्म नहीं पालता। इस संसारमण्डलमें जो महात्मा भी आत्माको विना जाने महान् पुण्यकर्म करता है, तो उसका फल अन्तमें क्षय हो जाता है, इसलिये आत्मलोककी उपासना करे, जो आत्मलोककी उपासना करता है उसका कर्म क्षय नहीं होता। इस आत्मासे ही जो-जो चाहता है, उत्पन्न कर लेता है॥६८॥

निश्चय ब्रह्मके दो रूप हैं, मूर्त्त और अमूर्त्त; मूर्त्त मरणशील है, अमूर्त्त अमर है, मूर्त्त स्थित यानी परिच्छिन्न है, अमूर्त्त यत् यानी अपरिच्छिन्न है, मूर्त्त सत् है यानी प्रत्यक्ष देखनेमें आता है और अमूर्त्त त्यत् है यानी इन्द्रियोंका विषय नहीं है॥६९॥

वह यह आत्मा सब भूतोंका अधिपति है, सब भूतोंका राजा है। जैसे रथकी नाभिमें और रथकी नेमिमें सब अरे आरोपित होते हैं, इसी प्रकार इस आत्मामें सब भूत, सब देव, सब लोक, सब प्राण ये सब आत्मारूपसे आरोपित हैं॥७०॥

जो विज्ञान-बुद्धिमें स्थित होकर बुद्धिके अन्तर है, जिसको बुद्धि नहीं जानती, जिसका बुद्धि शरीर है, जो विज्ञानको भीतरसे नियममें रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है॥७१॥

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन ॥७२॥ (बृह० ३।८।८)

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः ॥७३॥ (बृह० ३।८।१०)

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतꣳश्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥७४॥ (बृह० ३।८।११)

आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चनेति ॥७५॥
(बृह० ४।३।१४)

यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात् ॥७६॥
(बृह० ४।३।३०)

याज्ञवल्क्यने कहा—हे गार्गि ! इस अक्षरको ब्राह्मण स्थूलसे भिन्न, अणुसे भिन्न, ह्रस्वसे भिन्न, दीर्घसे भिन्न, अग्निके लोहित रूपसे भिन्न, जलके गुण स्नेहसे भिन्न, छायासे भिन्न, अन्धेरेसे भिन्न, वायुसे भिन्न, आकाशसे भिन्न, संगरहित, रसरहित, गन्धरहित, चक्षुरहित, श्रोत्ररहित, वाणीरहित, मनरहित, तेजरहित, प्राणरहित, मुख-रहित, प्रमाणरहित, छिद्ररहित और वाह्यरहित कहते हैं, वह कुछ भी नहीं खाता और उसको कोई नहीं खाता ॥७२॥

हे गार्गि ! जो इस अक्षरको न जानकर इस लोकमें हवन करता है, यजन करता है और बहुत सहस्रों वर्षोंतक तप करता है, वह सब इसका अन्तवाला होता है, हे गार्गि ! जो इस अक्षरको न जानकर इस लोकसे मरता है, वह कृपण है और हे गार्गि ! जो इस अक्षरको जानकर इस लोकसे मरता है, वह ब्राह्मण है ॥७३॥

हे गार्गि ! वह ही यह अक्षर दिखायी नहीं देता और देखनेवाला है, सुनायी नहीं देता और सुननेवाला है, मनन नहीं किया जाता और मनन करनेवाला है, जाननेमें नहीं आता और जाननेवाला है, इसके सिवा द्रष्टा नहीं है, इसके सिवा श्रोता नहीं है, इसके सिवा मन्ता नहीं है, इसके सिवा विज्ञाता नहीं है, हे गार्गि ! इस अक्षरमें ही आकाश ओतप्रोत है ॥७४॥

लोग इस आत्माकी क्रीड़ाको देखते हैं, उसको कोई नहीं देखता ॥७५॥

वह जो नहीं जानता, सो जानता हुआ भी नहीं जानता । विज्ञाता-के ज्ञानका लोप नहीं होता क्योंकि वह अविनाशी है, उससे दूसरा कोई है नहीं कि अपनेसे भिन्नको जाने ॥७६॥

यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यज्जिघ्रेदन्योऽन्यद्रसयेदन्योऽन्यद्वदेदन्योऽन्यच्छृणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्स्पृशेदन्योऽन्यद्विजानीयात् ॥७७॥

(बृह० ४।३।३१)

सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवाऽऽनन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ॥७८॥

(बृह० ४।३।३२)

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन। अथ खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते ॥७९॥

(बृह० ४।४।५)

जहाँ दूसरा-सा हो। वहाँ दूसरा दूसरेको देखे, दूसरा दूसरेको सूँघे, दूसरा दूसरेको चक्खे, दूसरा दूसरेको बोले, दूसरा दूसरेको सुने, दूसरा दूसरेको माने, दूसरा दूसरेको छूवे, दूसरा दूसरेको जाने ॥७७॥

याज्ञवल्क्यने इस जनकको शिक्षा दी—हे सम्राट्! जलके समान शुद्ध एक द्रष्टा अद्वैत है, यह ब्रह्मलोक है, यही इस जीवकी परमगति है, यही इस जीवकी परम संपत् है, यही इसका परमलोक है, यही इसका परम आनन्द है, इसके आनन्दकी एक कलासे अन्य भूत जीते हैं ॥७८॥

वह यह आत्मा विज्ञानमय है, मनोमय है, प्राणमय है, चक्षुमय है, श्रोत्रमय है, पृथिवीमय है, जलमय है, वायुमय है, आकाशमय है, तेजमय है, अतेजमय है, काममय है, अकाममय है, क्रोधमय है, अक्रोध-मय है, धर्ममय है, अधर्ममय है, सर्वमय है, वह यह इदंमय है, अदोमय है, जैसा करनेवाला होता है, वैसे आचारवाला होता है, साधुकर्म करने-वाला साधु होता है। पाप करनेवाला पापी होता है, पुण्यकर्मसे पुण्यवाला होता है, पापसे पापी होता है, वेदवेत्ता कहते हैं कि यह पुरुष काममय है, जैसी कामनावाला होता है, वैसे निश्चयवाला होता है, जैसे निश्चयवाला होता है, वैसे कर्म करता है, जैसे कर्म करता है, वैसे फलको प्राप्त होता है ॥७९॥

यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मा-
ऽस्मिन्संदेह्ये गहने प्रविष्टः ।
स विश्वकृत्स हि सर्वस्य कर्ता
तस्य लोकः स उ लोक एव ॥८०॥
(बृह० ४ । ४ । १३)

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनꣳ हि तदिति ८१
(बृह० ४ । ४ । २१)

तदेतदृचाऽभ्युक्तम्—एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान् । तस्यैव स्यात्पदवित्तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति । तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवाऽऽत्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडेनं प्रापितोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं भगवते विदेहान्ददामि मां चापि सह दास्यायेति ॥८२॥
(बृह० ४ । ४ । २३)

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहम-स्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति ॥८३॥ (बृह० २ । ४ । १)

इस गहन देहमें प्रविष्ट हुआ जिसका आत्मा अनुलब्ध है यानी प्राप्त हो गया है और प्रतिबुद्ध है यानी ब्रह्म मैं ही हूँ, इस प्रकार साक्षात् कर चुका है, वह विश्वका करनेवाला है, सबका कर्ता है, उसका लोक आत्मा है, वह भी लोक ही है ॥८०॥

धीर ब्राह्मण उसीको जानकर मोक्षसंपादिका बुद्धि करे, बहुत शब्दोंका चिन्तन न करे क्योंकि यह वाणीको श्रम देना है ॥८१॥

यह बात ऋचा यानी मन्त्रसे कही है—यह ब्राह्मणकी नित्य महिमा है कि कर्मोंसे न बढ़ता है, न घटता है। मुमुक्षु इस पदका ही जानने-वाला होवे, इसको जानकर पापरूप कर्मसे लिपायमान नहीं होता। इस-लिये इस प्रकार जाननेवाला शान्त, दान्त, उपरतिवाला, तितिक्षु, समाहित होकर आत्मामें ही आत्माको देखता है, सबको आत्मारूप देखता है, इसको पाप प्राप्त नहीं होता, सब पापोंको आत्मभावसे प्राप्त होता है, इसको पाप नहीं तपाता, सब पापोंको भस्म कर देता है, पापरहित, रजरहित, संशयरहित ब्राह्मण हो जाता है, यह ब्रह्मलोक है, हे राजन्! तू इसको प्राप्त हुआ है, ऐसा याज्ञवल्क्यने कहा। यह सुनकर जनकने कहा—हे भगवन्! सब विदेह-नगर मैं आपको देता हूँ और अपनेको भी दास बनानेके लिये देता हूँ ॥८२॥

याज्ञवल्क्यने कहा—हे मैत्रेयी! मैं इस स्थानसे ऊँचे आसनमें जाना चाहता हूँ, इसलिये कात्यायनीके साथ मैं तेरे धनका विभाग करूँगा ॥८३॥

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितꣳ स्यादमृतत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वित्तेनेति ॥८४॥

(बृह० २ । ४ । २)

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ॥८५॥

(बृह० २ । ४ । ३)

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस एह्यास्स्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥८६॥

(बृह० २ । ४ । ४)

स होवाच × × × न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदꣳ सर्वं विदितम् ॥८७॥

(बृह०२।४ । ५)

उस मैत्रेयीने कहा—यदि मेरा यह ऐश्वर्य सर्व पृथिवीके धनसे पूर्ण हो तो क्या मैं अमृत हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्यने कहा—नहीं! नहीं! जैसे विशेष सामग्रीवालोंका जीवन होता है, इसी प्रकार तेरा होगा, अमर होनेकी तो धनसे आशा नहीं है ॥८४॥

मैत्रेयीने कहा—जिससे मैं अमृत नहीं होऊँगी, उसको लेकर मैं क्या करूँगी? जो भगवान् जानते हैं, वही मुझसे कहिये ॥८५॥

उन याज्ञवल्क्यने कहा—हे मैत्रेयी! तू पूर्वमें भी मेरी प्रिया थी, अब तू मेरे चित्तके अनुकूल बोलती है, इसलिये तू यहाँ बैठ जा, अमृतत्वका साधन जो तेरा इष्ट है मैं तुझसे कहूँगा, जो कुछ मैं कहूँ, ध्यान देकर सुन ॥८६॥

याज्ञवल्क्यने कहा—अरी मैत्रेयी! सबकी कामनाके लिये सब प्रिय नहीं होते, आत्माकी कामनाके लिये ही सब प्रिय होते हैं। अरे! आत्माको देखना चाहिये, सुनना चाहिये, मनन करना चाहिये, ध्यान करना चाहिये। अरी मैत्रेयी! आत्माके देखने, सुनने, मनन करने और जाननेसे यह सब जाना हुआ हो जाता है ॥८७॥

स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्योपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳहुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि ॥८८॥ (बृह० ४।५।११)

स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥८९॥

(बृह० ४।५।१३)

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवान्मोहान्तमापीपिपन्न वा अहमिमं विजानामीति स होवाच न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ॥९०॥

(बृह० ४।५।१४)

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरꣳ रसयते तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरꣳ शृणोति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरꣳ स्पृशति तदितर इतरं विजानाति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कꣳ रसयेत्तत्केन कमभि-

वह दृष्टान्त यह है कि जैसे गीली लकड़ियोंसे जलाये हुए अग्निमेंसे धूम निकलता है, इसी प्रकार इस अपरिच्छिन्नरूप ब्रह्मके ये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, देवजनविद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान, व्याख्यान, इष्ट, हुत, आशित, पायित, इहलोक, परलोक तथा सर्वभूत ये सब निकले हुए श्वास हैं ॥८८॥

वह दृष्टान्त यह है—जैसे नमकका टुकड़ा भीतररहित, बाहररहित, सम्पूर्ण रसरूप होता है, इसी प्रकार अरे! यह आत्मा भीतररहित, बाहररहित, सम्पूर्ण प्रज्ञानघन ही इन भूतोंसे उठकर यानी भूतोंके अभिमानसे रहित होकर, उनके पीछे ही नष्ट हो जाता है, मरनेके बाद विशेष नहीं रहता, ऐसा मैं कहता हूँ, यह याज्ञवल्क्यने कहा ॥८९॥

उस मैत्रेयीने कहा—भगवन्! मुझे मोहमें मत डालिये, मैं यह नहीं जानती यानी यह बात मेरी समझमें नहीं आयी। उन्होंने कहा—अरे! मैं मोहमें नहीं डालता, यह आत्मा अविनाशी है, अनुच्छिन्न धर्मवाला है ॥९०॥

जहाँ द्वैतके समान होता है, वहाँ दूसरा दूसरेको देखता है, वहाँ दूसरा दूसरेको सूँघता है, वहाँ दूसरा दूसरेको चखता है, वहाँ दूसरा दूसरेसे बोलता है, वहाँ दूसरा दूसरेको सुनता है, वहाँ दूसरा दूसरेको मानता है, वहाँ दूसरा दूसरेको छूता है, वहाँ दूसरा दूसरेको जानता है और जहाँ इसका सब आत्मा ही हो गया, वहाँ किससे किसको देखे, किससे किसको सूँघे, किससे किसको चखे, किससे किसको

वदेत्तत्केन कँ श्रृणुयात्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कँ स्पृशेत्तत्केन कं विजानीयाद्येनेदँ सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्जतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजानीयादित्युक्तानुशासनाऽसि मैत्रेय्येतावदरे खल्वमृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार ॥९१॥

(बृह० ४।५।१५)

× × × तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्द द द इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतत्त्रयँ शिक्षेद्दमं दानं दयामिति ॥९२॥

(बृह० ५।२।३)

एतद्वै परमं तपो यद्व्याहितस्तप्यते परमँ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमरण्यँ हरन्ति परमँ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमग्नावभ्यादधति परमँ हैव लोकं जयति य एवं वेद ॥९३॥

(बृह० ५।११।१)

तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥९४॥

(प्रश्न० १।१५, १६)

बोले, किससे किसको सुने, किससे किसको माने, किससे किसको सूँघे, किससे किसको जाने? जिससे इन सबको जानता है, इसको किससे जाने? वह ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, आत्मा है, अगृह्य है, ग्रहण नहीं किया जाता, अशीर्य है, घिसता नहीं है, असंग है, आसक्त नहीं होता, असित है, व्यथाको प्राप्त नहीं होता, न उसका विनाश होता है, अरे! विज्ञाताको किससे जाने, ऐसा तुझे उपदेश है, हे मैत्रेयी! इतना ही अमरपना है, ऐसा कहकर याज्ञवल्क्य चले गये ॥६१॥

प्रजापतिके अनुशासनका ही यह दैवी वाणी अनुवाद करती है कि मेघ द, द, द कहता है, उसका अर्थ यह है कि दमन करता है, दान देता है, दया करता है, इसलिये आचार्य दमन, दान और दया इन तीनका ही उपदेश करे, यानी विषयासक्त इन्द्रियोंका दमन करे, लोभी पुरुष दान करे और क्रूर पुरुष दया करना सीखे ॥६२॥

ज्वरादि व्याधियोंसे जो दुःखको प्राप्त होता है, उसको परम तप समझे। जो ऐसा जानता है, वह परमलोकको जीत लेता है। जिस मुझ मृतकको अरण्यमें जलानेको ले जायँगे, उसको परम तप समझे, ऐसे समझनेवाला परमलोकको जीत लेता है। जिस मुझको अग्निमें जलावेंगे, यह तप है, ऐसा समझनेवाला परमलोकको जीत लेता है ॥६३॥

उनका ही यह ब्रह्मलोक है, जिनमें तप और ब्रह्मचर्य है और जिनमें सत्य स्थित है, उनका ही यह शुद्ध ब्रह्मलोक है, जिनमें कुटिलता नहीं है असत्य नहीं है और माया नहीं है ॥६४॥

××प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥९५॥ (छान्दो० ४।५।२)

× ×पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥९६॥
(छान्दो० ४।६।३)

× ×अग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥९७॥
(छान्दो० ४।७।३)

× ×प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥९८॥
(छान्दो० ४।८।३)

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाꣳस्त्वेव मे कामं ब्रूयात् ॥ श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किञ्चन वीयायेति वीयायेति ॥९९॥ (छान्दो० ४।९।२, ३)

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते
तस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥१००॥
(श्वेता० १।६)

पूर्व-दिशा कला है, पश्चिम-दिशा कला है, दक्षिण-दिशा कला है, उत्तर-दिशा कला है। हे सोम्य ! इस चार कलावाले ब्रह्मके पादका नाम प्रकाशवान् है ॥९५॥

पृथिवी कला है, अन्तरिक्ष कला है, स्वर्ग कला है, समुद्र कला है। हे सोम्य ! इस चार कलावाले ब्रह्मके पादका नाम अनन्तवान् है ॥९६॥

अग्नि कला है, सूर्य कला है, चन्द्र कला है, बिजली कला है। हे सोम्य ! इस चार कलावाले ब्रह्मके पादका नाम ज्योतिष्मान् है ॥९७॥

प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है, मन कला है। हे सोम्य ! इस चार कलावाले ब्रह्मके पादका नाम आयतनवान् है ॥९८॥

गुरुका प्रश्न—हे सोम्य ! तू ब्रह्मवेत्ता-सा भासता है, तुझे किसने उपदेश दिया है ? शिष्यका उत्तर—मनुष्योंसे अन्यने मुझे उपदेश दिया है। ऐसा कहकर फिर शिष्यने कहा—मेरी कामनाके अनुसार तो आप ही उपदेश करेंगे क्योंकि आपके समान पुरुषोंसे—आचार्यसे प्राप्त हुई विद्या ही सफल होती है। इतना सुनकर गुरुने उसी विद्याका उपदेश किया। श्रुति कहती है—ऋषभादिकी उपदेश की हुई विद्या भी कुछ अपूर्ण न थी किन्तु पूर्ण ही थी ॥९९॥

इस सबके जीवन, सबके स्थान, वृहत् ब्रह्मचक्रमें हंस भ्रमण करता है, प्रेरणा करनेवाले आत्माको पृथक् जानकर उपासक मुमुक्षु उससे युक्त होकर अमृतत्वरूप मोक्षको प्राप्त होता है ॥१००॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१०१॥
(श्वेता० ३।८)

यस्मात्परं नापरमस्ति किंचि-
द्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥१०२॥
(श्वेता० ३।९)

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥१०३॥
(श्वेता० ३।१९)

ऋचो अक्षरे परमे व्योम-
न्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥१०४॥
(श्वेता० ४।८)

मैं इस आदित्यवर्णवाले, अँधेरेसे पर, महान् पुरुषको जानता हूँ, इसको जानकर ही मनुष्य मृत्युसे लाँघ जाता है, मोक्षके लिये अन्य मार्ग नहीं है ॥१०१॥

जिससे पर और अपर कुछ नहीं है, न जिससे कुछ सूक्ष्म है, न कुछ बड़ा है, जो वृक्षके समान अचल है, एक ही स्वर्गमें स्थित है, जिस पुरुषसे यह सब पूर्ण है ॥१०२॥

विना हाथ पकड़नेवाला है, विना पैर तेज दौड़नेवाला है, विना आँखके देखता है, विना कानके सुनता है, वह जानने योग्यको जानता है, उसका जाननेवाला नहीं है, उसको आदि, महान् पुरुष कहते हैं ॥१०३॥

इस ऋक् परम अक्षर आकाशमें विश्वेदेवता स्थित हैं। जो उसको नहीं जानता, उसको ऋचा क्या करेगी और जो इसको जानते हैं, वे सम—एकरस हो जाते हैं ॥१०४॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०५॥
(श्वेता० ४ । १०)

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१०६॥
(श्वेता० ४ । ११)

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥१०७॥
(श्वेता० ४ । १४)

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन्युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च
तमेव ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥१०८॥
(श्वेता० ४ । १५)

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१०९॥
(श्वेता० ४ । १६)

मायाको प्रकृति जाने, मायावालेको महेश्वर जाने। इन दोनोंके अवयव भूतोंसे यह सर्व जगत् व्याप्त है ॥१०५॥

जो योनि-योनिमें अधिष्ठित है, जिसमें यह और वह सब चेष्टा करता है, उस ईश, वरदायक पूज्य देवको जानकर मनुष्य अत्यन्त शान्तिको प्राप्त होता है ॥१०६॥

सूक्ष्मसे अति सूक्ष्म, कलिलके मध्यमें विश्वके स्रष्टा अनेक रूपवाले, विश्वभरके लपेटनेवाले शिवको जानकर पुरुष अत्यन्त शान्तिको प्राप्त होता है ॥१०७॥

वही भुवनोंका रक्षक, विश्वका अधिपति, सर्वदा सब भूतोंमें गूढ़ है, जिसमें ब्रह्म-ऋषि और देवता युक्त हैं, इसको जानकर मनुष्य मृत्युके पासको काट देता है ॥१०८॥

घीसे पर, मण्डके समान अति सूक्ष्म, सर्व भूतोंमें गूढ़, विश्वके एक लपेटनेवाले देव शिवको जानकर मनुष्य सब पाशोंसे छूट जाता है। रसोंके अग्र भागका नाम मण्ड है, इसको माण्ड कहते हैं ॥१०९॥

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो
यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं
ज्ञात्वाऽऽत्मस्थममृतं विश्वधाम ॥११०॥
(श्वेता० ६।६)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ता-
द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥१११॥
(श्वेता० ६।७)

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥११२॥
(श्वेता० ६।९)

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥११३॥
(श्वेता० ६।११)

वह वृक्षकालकी आकृतियोंसे परे अन्य है, जिससे यह प्रपञ्च परिवर्तनको प्राप्त होता है, उस धर्मदायक, पापनाशक विश्वरूप ऐश्वर्योंके ईशको जानकर अमृतको प्राप्त होते हैं ॥११०॥

उस ईश्वरोंके परम ईश्वर, उस देवताओंके परम दैवत, पतियोंके परम पति, भुवनोंके ईश्वर, पूज्य देवको हम परमरूपसे जानते हैं ॥१११॥

उसका लोकमें कोई पति नहीं है, न नियामक है, न उसका लिङ्ग है, वह कारण है, करणोंके अधिपति जीवका अधिपति है, न उसको कोई उत्पन्न करनेवाला है, न अधिपति है ॥११२॥

एक देव सर्व भूतोंमें छिपा हुआ है, सर्वव्यापी है, सबका अन्तरात्मा है, कर्मोंका फल देनेवाला है, सब भूतोंका अधिष्ठान है, साक्षी, चेतन, केवल और निर्गुण है ॥११३॥

निष्कलं निष्क्रियꣳ शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परꣳ सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥११४॥
(श्वेता० ६ । १९)

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥११५॥
(श्वेता० ६ । २३)

×× अथ नवमे मासि सर्वलक्षणसंपूर्णो भवति पूर्वजातीः स्मरति कृताकृतं च भवति शुभाशुभं च कर्म विन्दति ॥११६॥

नाना योनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया ।
आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ।११७।

जातस्यैव मृतस्यैव जन्म चैव पुनः पुनः ।
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥११८॥

यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥११९॥

यदि योन्याः प्रमुच्येयं सांख्यं योगं समभ्यसे ।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥१२०॥

यदि योन्याः प्रमुच्येयं तं प्रपद्ये महेश्वरम् ।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥१२१॥

कलारहित, क्रियारहित, शान्त, निर्दोष, मायारहित, अमृतके परम सेतु, जली हुई लकड़ियोंके अग्निके समान देवके मैं शरण हूँ ॥११४॥

परमात्मादेवमें जिसकी पराभक्ति है और जैसी देवमें भक्ति है, वैसी ही गुरुमें है, यह अर्थ उस महात्माके ही जाननेमें आते हैं ॥११५॥

पीछे नवें मासमें सर्व लक्षणोंसे सम्पन्न हो जाता है, पूर्वजन्मोंका स्मरण करता है, किये-न-किये कर्मोंका स्मरण होता है, शुभ-अशुभ कर्मोंको जानता है ॥११६॥

कई हजार योनियोंको मैंने देखा है, अनेक प्रकारके आहार—भोजन किये हैं, अनेक प्रकारके स्तन पिये हैं ॥११७॥

जन्मता रहा हूँ, मरता रहा हूँ और बारम्बार जन्म लेता रहा हूँ। हाय! मैं दुःख-समुद्रमें डूब रहा हूँ, निकलनेका कोई उपाय नहीं देखता हूँ ॥११८॥

मैंने जो परिवारके लिये शुभ-अशुभ कर्म किये थे, उनके फलसे मैं अकेला ही जल रहा हूँ, वे फल भोगनेवाले चले गये ॥११९॥

यदि मैं योनिसे छूटूँगा तो सांख्य अथवा योगका अभ्यास करूँगा, अशुभके क्षय करनेवाले और मुक्तिफलके देनेवालेको मैं भजूँगा ॥१२०॥

यदि मैं योनिसे मुक्त होऊँ तो अशुभके क्षय करनेवाले और मुक्तिफलके देनेवाले महेश्वरको भजूँगा ॥१२१॥

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तं प्रपद्ये नारायणम् ।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥१२२॥

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम् ।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥१२३॥

जन्तुः स्त्रीयोनिशतं योनिद्वारं संप्राप्यते यन्त्रेणाऽऽपीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृश्य तदा न स्मरति जन्ममरणं न च कर्म शुभाशुभम् ॥१२४॥

(गर्भोपनिषद्)

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥१२५॥

(नारा० १)

प्राजापत्यो हारुणिः सुपर्णेयः प्रजापतिं पितरमुपससार किं भगवन्तः परमं वदन्तीति । तस्मै प्रोवाच सत्येन वायुरावाति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्यं वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति तपसा देवा देवतामग्र आयन्तपस ऋषयःसुवरन्वविन्दन्तपसा सपत्नान्प्रणुदामारातीस्तपसि सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्तपः परमं वदन्ति दमेन दान्ताः किल्बिषमवधून्वन्ति दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन्दमो भूतानां दुराधर्षं दमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्दमः

यदि मैं योनिसे मुक्त होऊँ, तो अशुभके क्षय करनेवाले और मुक्ति-फलके देनेवाले नारायणको भजूँगा ॥ १२२ ॥

यदि मैं योनिसे मुक्त होऊँ, तो अशुभके क्षय करनेवाले और मुक्ति-फलके देनेवाले सनातन ब्रह्मका ध्यान करूँगा ॥ १२३ ॥

सैंकड़ों स्त्री-योनि और योनि-द्वारको जन्तु प्राप्त होता है, यन्त्रसे पीड़ित हुआ महान् दुःखसे जन्मता है और वैष्णवी-वायुका स्पर्श करके जन्म, मरण और शुभाशुभ कर्मको भूल जाता है ॥१२४॥

जो कुछ जगत् देखने अथवा सुननेमें आता है, इस सबको बाहर-भीतरसे व्याप्त करके नारायण स्थित हैं ॥१२५॥

प्रजापतिका पुत्र आरुणि सुपर्णेय प्रजापतिके पास जाकर कहने लगा—'हे भगवन् ! परम किसको कहते हैं ?' प्रजापतिने उससे कहा—'सत्यसे वायु चलता है, सत्यसे आदित्य स्वर्गमें प्रसन्न होता है, सत्य वाणीकी प्रतिष्ठा है, सत्यमें सब स्थित है, इसलिये सत्यको परम कहते हैं।' तपसे देवोंने पूर्वमें देवत्व प्राप्त किया, तपसे ऋषियोंने सुवर्लोक प्राप्त किया, तपसे शत्रुओंको जीता, तपमें सब स्थित है, इसलिये तपको परम कहते हैं, दमसे दमनशील पुरुषोंने पापोंको दूर किया, दमसे ब्रह्मचारियोंने स्वर्ग प्राप्त किया, दम भूतोंको दुराधर्ष है यानी कठिनाईसे किया जाता है, दममें सब स्थित हैं, इसलिये दमको

परमं वदन्ति शमेन शान्ताः शिवमाचरन्ति शमेन नाकं मुनयोऽन्वविन्दञ्छमो भूतानां दुराधर्षं शमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माच्छमः परमं वदन्ति दानं यज्ञानां वरूथं दक्षिणा लोके दातारः सर्वभूतान्युपजीवन्ति दानेनारातीरपानुदन्त दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्दानं परमं वदन्ति धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमपनुदति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्तिXX ॥१२६॥

(नारा० ७९)

XXतत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वासऋभुनिदाघजडभरतदत्तात्रेयरैवतकभुसुण्डप्रभृतयः ॥१२७॥

(बृ० जाबा० ७।३)

XXयत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्र नाग्निर्दहति यत्र न मृत्युः प्रविशति यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनस्तदेतदृचाऽभ्युक्तम्। तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ ॐ सत्यम् ॥१२८॥

(बृ० जाबा० ८।६)

परम कहते हैं। शमसे शान्त पुरुष कल्याणका आचार करते हैं, शमसे मुनि स्वर्ग प्राप्त करते हैं, शम भूतोंको दुराधर्ष है, शममें सब स्थित हैं, इसलिये शमको परम कहते हैं। दान यज्ञोंका समूह है, दाताके दानसे लोकमें सब भूत उपजीवित होते हैं, दानसे शत्रु नष्ट किये जाते हैं, दानसे द्वेषी मित्र हो जाते हैं, दानमें सब स्थित हैं, इसलिये दानको परम कहते हैं। धर्म विश्व यानी जगत्की प्रतिष्ठा है, प्रजा धर्मिष्ठका अनुकरण करती है, धर्मसे पाप नष्ट किये जाते हैं, धर्ममें सब स्थित हैं, इसलिये धर्मको परम कहते हैं ॥१२६॥

संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वास, ऋभु, निदाघ, जडभरत, दत्तात्रेय, रैवतक, भुसुण्ड आदि परमहंसोंके नाम हैं ॥१२७॥

जहाँ सूर्य नहीं तपता, जहाँ वायु नहीं चलता, जहाँ चन्द्रमा नहीं भासता, जहाँ नक्षत्र नहीं भासते, जहाँ अग्नि नहीं जलता, जहाँ मृत्यु नहीं प्रवेश करता, जहाँ दुःख प्रवेश नहीं करते, सत्, आनन्दरूप, परमानन्दरूप, शान्त, शाश्वत, सदाशिव, ब्रह्मादिसे वन्दित, योगियोंका ध्येय, परमपद, जहाँ जाकर योगी नहीं लौटते, उस इसको ऋचा इस प्रकार कहती है—पण्डितगण आकाशमें विस्तृत चक्षुतुल्य सूर्यके सदृश तेजस्वरूप व्यापक विष्णु अर्थात् परमात्माके परमस्वरूपका साक्षात्कार करते हैं। मेधावी, सर्वदा आत्मतत्त्वमें जागरणशील अर्थात् समाधिद्वारा सर्वदा आत्मनिष्ठ ब्राह्मणगण व्यापक परमात्मा विष्णुके उत्कृष्ट स्वरूपको समृद्धियुक्त करते हैं—यही सत्य है ॥१२८॥

××हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम् ।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥१२९॥
(कलिसं० १ । २)

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तं निर्विषयं स्मृतम् ॥
अतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते ।
तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥१३०॥
(ब्रह्मबिन्दु० २ । ३)

स्वरेण संधयेद्योगमस्वरं भावयेत्परम् ।
अस्वरेण हि भावेन भावो नाभाव इष्यते ॥१३१॥
(ब्रह्मबिन्दु० ७)

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥१३२॥
(ब्रह्मबिन्दु० १२)

ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्त्वतः ।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥१३३॥
(ब्रह्मबिन्दु० १८)

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता ।
क्षीरवत्पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनस्तु गवां यथा ॥१३४॥
(ब्रह्मबिन्दु० १९)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ ये सोलह नाम कलिके पापोंके नाश करनेवाले हैं, इनसे श्रेष्ठ अन्य उपाय वेदोंमें देखनेमें नहीं आता ॥१२६॥

मन ही मनुष्योंके बन्ध और मोक्षका कारण है, विषयासक्त मन बन्धके लिये है और निर्विषय मन मुक्त माना जाता है। इसलिये इस निर्विषय मनकी मुक्ति मानी जाती है, इसलिये मुमुक्षुको नित्य मनको निर्विषय करना चाहिये ॥१३०॥

स्वरसे योगका अनुसन्धान करे, परमात्माको अस्वर माने, अस्वर भावसे ही भाव न अभाव माना जाता है ॥१३१॥

एक ही भूतात्मा भूत-भूतमें स्थित है, जलमें चन्द्रके समान एक ही बहुत प्रकारका दिखायी देता है ॥१३२॥

बुद्धिमान् ग्रन्थोंका अभ्यास करके ज्ञान-विज्ञानको तत्त्वसे जानकर जैसे धान्यका चाहनेवाला छिलकोंको त्याग देता है, इसी प्रकार अशेष-रूपसे ग्रन्थको त्याग देवे ॥१३३॥

अनेक रंगकी गौओंमें दूध एक रंगका ही होता है। दूधके समान ज्ञानको देखे और पदार्थोंको गौओंके समान देखे ॥१३४॥

घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम् ।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन ॥१३५॥

(ब्रह्मबिन्दु २०)

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ॥१३६॥

(बृह० १ । ३ । २८)

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ॥१३७॥

(जावा० ४)

यद्वै तत्सुकृतम् । रसो वै सः । रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ॥१३८॥

(तैत्ति० २ । ७)

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुःस्वयमिन्द्रःस्वयं शिवः ।
स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किंचन ॥१३९॥

यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति द्वितीयाद्वै भयं भवति ॥१४०॥

(बृह० १ । ४ । २)

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ॥
ज्ञानन्तु कैवल्यम् ।
अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राण्यनेकशः ।
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा ॥१४१॥

(मुक्ति० २ । ६९)

दूधमें घीके समान भूत-भूतमें विज्ञान गुप्तरूपसे बसता है, इसलिये मन्थानरूप मनसे सदा मथना चाहिये ॥१३५॥

असत्से मुझे सत्की ओर ले चलो, अँधेरेसे प्रकाशकी ओर ले चलो, मृतसे मुझे अमृतकी ओर ले चलो ॥१३६॥

जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन संन्यास धारण करके चला जाय ॥१३७॥

जो वह निश्चय पुण्य है, वह निश्चय रस है। रसको प्राप्त करके ही यह आनन्दवाला होता है ॥१३८॥

आप ब्रह्मा है, आप विष्णु है, आप इन्द्र है, आप शिव है, आप यह सब विश्व है, आपके सिवा अन्य कुछ नहीं है ॥१३९॥

जब मेरे सिवा अन्य नहीं है, तो मैं किससे भय करूँ ? दूसरेसे ही भय होता है ॥१४०॥

ज्ञानमयी दृष्टि करके जगत्को ब्रह्ममय देखे। ज्ञान ही कैवल्य है। चारों वेदों और सर्व शास्त्रोंको अनेक प्रकारसे पढ़कर भी जो ब्रह्मतत्त्वको नहीं जानता, जैसे करछुली पाकरसको नहीं जानती, इसी प्रकार वह मूढ़ है ॥१४१॥

स्वदेहोऽशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान् ।
विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते ॥१४२॥
(मुक्ति० २ । ६६)

अनुभूतिं विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते ।
प्रतिबिम्बितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत् ॥१४३॥
(मैत्रेयी० २ । २२)

आनन्दमूलगुणपल्लवतत्त्वशाखा
वेदान्तमोक्षफलपुष्परसादिकीर्णम् ।
चेतो विहङ्गहरितुङ्गतरुं विहाय
संसारशुष्कविटपे वद किं करोषि ॥१४४॥

अपने देहके अपवित्र गन्धसे जिस पुरुषको वैराग्य न हो, उसके वैराग्यका कारण क्या उपदेश किया जाय? अर्थात् कोई नहीं ॥१४२॥

प्रतिबिम्बित शाखाके अग्रभागके फलके स्वादके मोदके समान, मूढ़ अनुभव बिना वृथा ही ब्रह्ममें मोद मानता है ॥१४३॥

आनन्दमूलवाले, गुणरूप पत्तेवाले, तत्त्वरूप शाखावाले, वेदान्त-रूप मोक्षफल, पुष्परसादिसे पूर्ण भगवान्के केसर-वृक्षको छोड़कर हे चित्त! संसाररूप शुष्क वृक्षमें बसा, तू क्या करेगा? अर्थात् शुष्क संसार-वृक्षको छोड़कर सुखरूप ईश्वरको भज ॥१४४॥

जीवन्मुक्तस्तोत्रम्

अखण्डं परमाद्वैतं स्वतन्त्रं परमं शिवम् ।
सर्वगं सच्चिदानन्दं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१॥

निरालम्बं निरातङ्कं द्वैताद्वैतविवर्जितम् ।
सर्वात्मानं सदा शान्तं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥२॥

चिन्मयं परमं तीर्थं सुनित्यं नित्यनिर्मलम् ।
ब्रह्मचित्तं सतां सेव्यं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥३॥

सर्वसद्गुणसम्पूर्णं शुद्धसत्त्वमयं शुभम् ।
जन्ममृत्युजरातीतं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥४॥

धन्यं धन्यं सदा धन्यं स्वरूपावस्थितं परम् ।
सुखरूपं सदा पूर्णं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥५॥

द्वेष्यं नास्ति प्रियं नास्ति यस्य नास्ति शुभाशुभम् ।
स्वार्थहीनं समं शुद्धं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥६॥

भवन्ति यस्य कर्माणि लोककल्याणहेतवे ।
मायातीतं गुणातीतं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥७॥

ईश्वरं सर्वविश्वानां सर्वविश्वस्वरूपकम् ।
सर्वोपाधिविहीनं तं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥८॥

चित्स्वभावं स्वतन्त्रं च हेयोपादेयवर्जितम् ।
निष्कलं परमानन्दं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥९॥

नैव निन्दाप्रशंसाभ्यां यस्य विक्रियते मनः ।
आत्मतृप्तं सदा तुष्टं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१०॥

जीवन्मुक्त-स्तोत्र

अखण्ड, परम अद्वैत, स्वतन्त्र, परमशिव, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द-रूप जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

आलम्बनरहित, भयरहित, द्वैत-अद्वैतसे रहित, सबके आत्मा, सदा शान्त, जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

चिन्मय, परम तीर्थ, स्वभावसे ही नित्य, नित्य निर्मल, ब्रह्माकार-चित्तवाले, सत्पुरुषोंके सेव्य जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

सर्व उत्तम गुणोंसे पूर्ण, शुद्ध सत्त्वमय, शुभ, जन्म, मृत्यु, जरासे रहित जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

धन्य, कृतार्थस्वरूप, सर्वदा धन्य, स्वरूपमें स्थित, परम, सुखरूप, सदा पूर्ण जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥

जिसका कोई द्वेषी नहीं है, न कोई प्रिय है। जिसका शुभाशुभ नहीं है, ऐसे स्वार्थहीन, सम और शुद्ध जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

जिसके सब कर्म लोकोंके हितके लिये होते हैं, ऐसे मायातीत, गुणातीत जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

सब विश्वोंके ईश्वर, सर्व विश्वस्वरूप, सब उपाधियोंसे रहित उस जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥८॥

चैतन्य स्वभाववाले, स्वतन्त्र, त्याग और ग्रहणसे रहित, निष्कल, परमानन्दरूप जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥९॥

जिसका मन निन्दा-प्रशंसासे विकारको प्राप्त नहीं होता, ऐसे आत्मतृप्त, सदा सन्तुष्ट जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

नित्यं जाग्रदवस्थायां सुप्तवद् योऽवतिष्ठते ।
पुण्यापुण्यविहीनं तं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥११॥

माया नास्ति जगन्नास्ति यस्य ज्ञानमहोदधेः ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१२॥

रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ।
अन्तर्व्योमवदाच्छन्नं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१३॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
कुर्वतोऽकुर्वतो वा तं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोन्मुक्तं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१५॥

यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः ।
निर्द्वन्द्वं वासनाहीनं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१६॥

चैत्यवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने ।
अक्षुब्धचित्तं विश्रान्तं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१७॥

इदं जगदहं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवम् ।
यस्य चित्ते न स्फुरति जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१८॥

स्वयमेव स्वयं हंसं स्वयमेव स्वयं स्थितिम् ।
स्वयमेव स्वयं पश्यन् जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥१९॥

ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी ।
स्वच्छरूपो महामौनी जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥२०॥

शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः ।
नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥२१॥

जो स्वप्नके समान जाग्रत्-अवस्थामें स्थित रहता है, उस पुण्य-पापसे रहित जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥११॥

जिसके ज्ञानरूप महासमुद्रमें माया नहीं है, जगत् नहीं है, ऐसे सर्व दोषोंसे रहित जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

राग, द्वेष, भयादिके अनुसार वर्तते हुए भी भीतरसे आकाश-के समान अपरिच्छन्न जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

जिसमें अहङ्कार नहीं है, जिसकी करते हुए अथवा न करते हुए, बुद्धि लिप्त नहीं होती, उस जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

जिससे लोग उद्विग्न नहीं होते, जो लोगोंसे उद्विग्न नहीं होता, ऐसे हर्ष-अमर्षसे मुक्त जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५॥

जो समस्त पदार्थजालमें व्यवहार करता हुआ भी शीतल है, ऐसे निर्द्वन्द्व, वासनाहीन जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

स्फुरणरहित परम पावन चिन्मात्रमें, क्षोभरहित विश्रान्त जीव-न्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१७॥

जिसके चित्तमें यह जगत्, मैं, वह, यह, अवास्तव दृश्य नहीं फुरता ऐसे जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

आप-ही-आप हंस, आप-ही-आप स्थित, आप-ही-आपको देखने-वाले जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१९॥

जो ब्रह्मभूत अत्यन्त शान्त मनवाला, ब्रह्मानन्दसे पूर्ण सुखी स्वच्छरूप और अत्यन्त मौनी है, ऐसे जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०॥

जो शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा है, सर्वसङ्गसे रहित है, नित्य आनन्द और प्रसन्न मन है, ऐसे जीवन्मुक्तको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२१॥

श्लोक-सूची

अ

क

ई, उ, ऊ

ऋ

ए

ॐ, ओं, अं

क

ज

त

द

प

व

श

स